



# शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काट्ट, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 6

अंक 24

त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका

10 अक्तूबर 2022

	इस अंक में	
<b>पीयर रिब्यू समिति:</b> डॉ.शांति नायर डॉ.के.श्रीलता डॉ.बी.अशोक	संपादकीय : 3 संघर्षशील नारी की जीवंत गाथा- 'सकुबाई' नाटक : राजेश कुमार.आर 5 भीष्म साहनी की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक संवेदनाएँ : डॉ वीणा.जे 6	
<b>मुख्य संपादक</b> <b>डॉ.पी.लता</b> प्रबंध संपादक <b>डॉ.एस.तंकमणि अम्मा</b> सह संपादक <b>प्रो.सती.के</b> <b>डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा</b> <b>श्रीमती वनजा.पी</b> संपादक मंडल <b>डॉ.बिन्दु.सी.आर</b> <b>डॉ.षीना.यू.एस</b> <b>डॉ.सुमा.आई</b> <b>डॉ.एलिसबत्त जोर्ज</b> <b>डॉ.लक्ष्मी.एस.एस</b> <b>डॉ.धन्या.एल</b> <b>डॉ.कमलानाथ.एन.एम</b> <b>डॉ.अश्वती.जी.आर</b>	समकालीन कविता में भारतीय समाज,संस्कृति, दशा और दिशा : डॉ.पवन कुमार शर्मा 10 ढोंगी साधुओं का यथार्थ चित्रण करनेवाला 'कालचक्र' : डॉ.रंजी कोशी 13 किन्नर व्यथा-हम नर हैं या नारी ? : डॉ. मिनी. ए.आर 16 उषा प्रियंवदा के 'नदी' उपन्यास में स्त्री जीवन : डॉ. राखी एस. आर 18 टेलिविज़न विज्ञापन में विपरीत लिंगियों के सकारात्मक चित्रण का अध्ययन : जितेंद्र सिंह 22 छात्र जीवन पर राजनीतिक प्रभाव : आतिरा बाबू 27 'अपना मोर्चा' के सन्दर्भ में चित्रामुद्गल और उनका कहानी : अभिषेक शर्मा 30 संग्रह 'भूख' अन्नू शर्मा भूमंडलीकरण तथा विश्व व्यवस्था में आदिवासी: वेद प्रकाश सिंह 34 समाज के शोषण का स्वरूप रतन थियाम के रंगकर्म में संस्कृति, परम्परा : सुनील कुमार 40 और समकालीनता गायत्री : मानवजाति का महामंत्र : डॉ.पूर्णमा.आर 46 एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में किसानों का जीवन यथार्थ : प्रिन्सी मात्यु 49	

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

## लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फॉन्ट में या हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 की वर्ड भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

**डॉ.पी.लता**

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वधुतक्काट्टु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946253648, 9946679280

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

14 सितंबर : हिन्दी दिवस। 'हिन्दी' भारत की राजभाषा। हम ज़रा इतिहास पर जायें। भारतीय संविधान संबन्धी प्रथम बैठक नौ दिसंबर उन्नीस सौ छियालीस (9-12-1946) में संपन्न हुई। इसके तीसरे दिन यानी ग्यारह दिसंबर उन्नीस सौ छियालीस (11-12-1946) को डॉ राजेन्द्र प्रसाद भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गये। इस सभा की नियत समिति ने 1946 में ही यह निर्णय लिया कि सभा के कामकाज की भाषा हिन्दुस्तानी या अंग्रेज़ी होगी। चौदह मई उन्नीस सौ सैंतालीस (14-07-1947) में संपन्न संविधान सभा की चौथी बैठक में सभा के कामकाज की भाषा संबन्धी निर्णय में यह संशोधन किया गया कि कामकाज की भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर 'हिन्दी' रखा जाए। 'हिन्दुस्तानी' शब्द राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को इसलिए प्रिय था कि वे भारत में हिन्दू-मुसलमान मैत्री चाहते थे। उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' शब्द का अर्थ भी निर्धारित किया था- 'सरल हिन्दी सरल उर्दू।' किन्तु राष्ट्रपिता का हिन्दू-मुसलमान मैत्रीवाला लक्ष्य परास्त हुआ तो 'स्वतंत्र भारत' की 'राजभाषा' का नाम 'हिन्दुस्तानी' रखने का सवाल नहीं उठता था। 'राजभाषा' का नाम 'हिन्दी' हो या 'हिन्दुस्तानी' इस पर विचार-विमर्श के बाद मतदान में 'हिन्दी' के पक्ष में 63 वोट किये गये और 'हिन्दुस्तानी' के पक्ष में 32 वोट।

भारतीय संविधान का प्रारूप फरवरी 1948 में प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह उल्लेख था कि संसद की भाषा अंग्रेज़ी या हिन्दी होगी। पं.जवहरलाल नेहरू ने 'राजभाषा' के पद पर एक 'अखिल भारतीय भाषा' की आवश्यकता का समर्थन किया। उन्होंने यह भी कहा कि स्वतंत्र भारत को अपनी ही भाषा में राजकाज चलाना चाहिए। अखिल भारतीय भाषा से उनका मतलब हिन्दी ही था।

6 और 7 अगस्त 1949 को 'राष्ट्रीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के तत्वावधान में आयोजित 'राष्ट्रीय भाषा सम्मेलन' में नागरी लिपि में लिखी जानेवाली 'हिन्दी' एकमत से 'राजभाषा' के पद पर स्वीकृत हुई। इस सम्मेलन में यह सुझाव भी दिया गया कि संविधान के लागू होने के बाद कर्मचारियों को अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी में कामकाज शुरू करने के लिए 10 वर्ष की अवधि देनी है। सभी व्यक्ति अंग्रेज़ी की जगह कामकाज की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करने के पक्ष में ही थे। किन्तु अधिकतर व्यक्ति कर्मचारियों को हिन्दी में कामकाज शुरू करने के लिए 10 वर्ष की जगह 15 वर्ष की अवधि देने के पक्ष में थे। हिन्दी की लिपि के रूप में देवनागरी का उपयोग करने पर आम सहमति भी रही।

राजभाषा हिन्दी के स्वरूप-निर्णय के लिए एक समिति गठित हुई। इसमें सर्वश्री एन.गोपालस्वामी अय्यंकार, टी.टी.कृष्णनाचारी, बी.आर.अंबेदकर, सुआदुल्ला आदि सदस्य रहे। इस समिति को सर्वश्री अब्दुल कलाम आज़ाद, गोविन्द वल्लभ पंत, पुरुषोत्तमदास टंडन, श्यामप्रसाद मुखर्जी, के.संतानम, श्रीमती अमृता कौर, घनश्याम गुप्त, मोटूरि सत्यनारायण आदि का भी सहयोग मिला।

राजभाषा की 'प्रारूप समिति' ने 16.08.1949 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें कहा गया कि संविधान के लागू होने के बाद 10 वर्ष तक अंग्रेज़ी में कामकाज चलता रहेगा और राजभाषा के अंक 'अंतर्राष्ट्रीय अंक' रहेंगे। यूँ अंग्रेज़ी का उपयोग और भी 10 वर्ष जारी करने का सुझाव इसलिए दिया गया कि जिन कर्मचारियों के शिक्षण-प्रशिक्षण का माध्यम अंग्रेज़ी था, वे शीघ्र ही अंग्रेज़ी छोड़ हिन्दी में सरकारी कामकाज नहीं कर सकते थे। प्रशासनिक भाषा में पारिभाषिक शब्दों, विशेष अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

आदरणीय श्री बी.आर.अंबेदकर ने 22.08.1949 को अपनी ओर से राजभाषा संबन्धी फोर्मुला रखा, जिसमें कही गयी मुख्य बातें इस प्रकार हैं- भारतीय संविधान के लागू होने के बाद कामकाज की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का प्रयोग 15 वर्ष ज़ारी रखना, राजभाषा में अंतर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग करना, न्यायालयों में अंग्रेज़ी का प्रयोग करना, राजभाषा हिन्दी का विकास करने के लिए देशीय भाषाओं की संविधान में अनुसूची देना, राजभाषा आयोग के गठन की आवश्यकता आदि।

इसके बाद श्री एन.गोपाल स्वामी अय्यंकार ने 02.09.1949 को अपना एक फोर्मुला रखा। इसका नाम पड़ा 'मुंशी अय्यंकार फोर्मुला'। इसमें 05.09.1949 तक 65 संशोधन किये गये। राजभाषा के लिए स्वीकृत 'अंतर्राष्ट्रीय अंकों' के बारे में डॉ.श्यामप्रसाद मुखर्जी ने समझाया-"ये अंक असल में हिन्दुस्तान की देन हैं, जो सदियों पहले हमने दुनिया को दिया था, उनको अपनाकार हम अपनी चीज़ वापस ले रहे हैं।"

'राजभाषा प्रारूप समिति' के सदस्यों ने राजभाषा हिन्दी संबंधी कुछ मुद्दों पर बल दिया कि संघ सरकार के कामकाज के लिए हिन्दी का प्रयोग हो, देवनागरी लिपि का प्रयोग हो तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप का प्रयोग हो। पं.जवहारलाल नेहरू ने समझाया कि राजभाषा हिन्दी परित्यागमूलक होने के बदले समावेशमूलक बने और उसमें भारत के सभी भाषाई तत्वों को शामिल करे, कुछ उर्दू के छींटे हों, हिन्दुस्तानी भी हो। राजभाषा हिन्दी के स्वरूप संबन्धी रिपोर्ट में ज़रूरी संशोधन करने के बाद 14.09.1949 को शाम के छः बजे को 'मुंशी अय्यंकार फोर्मुला' स्वीकार किया गया और 'हिन्दी' स्वतंत्र भारत में संघ सरकार की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। संस्कृत भाषा से विकसित 'शौरसेनी अपभ्रंश' से निकली 'पश्चिमी हिन्दी' की पाँच बोलियों में एक थी 'खड़ीबोली'।

भारत के सीमित प्रदेश में बोली मात्र रही 'खड़ीबोली हिन्दी' विविध ऐतिहासिक कारणों से शनैःशनै विकास पाकर भारत में सर्वाधिक प्रचलित भाषा बनी, राष्ट्र नेताओं की प्रिय भाषा बनी और जनता की प्रिय भाषा

बनी। 14 सितंबर, 1949 को हिन्दी स्वतंत्र भारत की राजभाषा के पद पर आसीन हुई। इस दिवस के स्मरणार्थ हम 14 सितंबर को 'हिन्दी दिवस'के रूप में मनाते हैं। भारतीय संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 से 351 तक तथा अष्टम अनुसूची मुंशी अय्यंकार फोर्मुला है।

भारतीय संविधान के परिशिष्ट में अष्टम अनुसूची में पहले 14 भाषाएँ दी गयी थीं। अनंतर अतिरिक्त कुछ भाषाएँ जोड़ी गयीं। अब 22 भाषाएँ दी गयी हैं। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ और हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता मिली। 14 सितंबर ही नहीं, हिन्दी के लिए और एक दिन भी है, 10 जनवरी, 'विश्व हिन्दी दिवस'। हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा उपलब्धियों-संभावनाओं पर विचार करने के लिए भारत सरकार की ओर से 'विश्व हिन्दी सम्मेलनों' का भी आयोजन होता है। बारहवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन फिजी में संपन्न होनेवाला है। 'प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन' भारत के नागपुर में 10 जनवरी से 13 जनवरी तक 1975 में चलाया गया। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के प्रथम दिन के स्मरणार्थ प्रतिवर्ष 10 जनवरी 'विश्व हिन्दी दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

हिन्दी भारत की राजभाषा स्वीकृत होने के इतने सालों बाद भी हिन्दीतर क्षेत्र के राज्यों में सरकारी कामकाज अपनी-अपनी राज्य भाषाओं या अंग्रेज़ी में चलता है। किन्तु हिन्दी को राजभाषा मानकर हिन्दी में उच्च अध्ययन किये तथा उच्च अध्ययन करनेवाले कई व्यक्ति इन राज्यों में हैं। प्रत्येक राज्य को अपनी राज्य भाषा महत्वपूर्ण है, साथ ही राष्ट्र की राजभाषा हिन्दी भी। अतः प्रत्येक राज्य में राज्यभाषा को जो स्थान है, वही स्थान हिन्दी को भी मिलना चाहिए। स्कूलों-कॉलेजों में हिन्दी माध्यम से अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिए।

◆ संपादक

डॉ.पी.लता

मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी



## संघर्षशील नारी की जीवंत गाथा 'सकुबाई' नाटक

♦ डॉ.राजेश कुमार.आर

विख्यात नाटककार नादिरा ज़हीर बब्बर का चर्चित नाटक है 'सकुबाई'।

नाटककार नादिरा ज़हीर बब्बर का जन्म 1948 जनवरी 20 को हुआ। 'एकजुट' नादिरा ज़हीर बब्बर की अपनी नाट्य संस्था है। आथेलो, तुगलक, जसमा ओढन, संध्या छाया आदि नाटकों में नादिरा ज़हीर बब्बर ने केंद्रीय भूमिकाएँ निभायीं। राजनेता और हिन्दी फिल्मों के अभिनेता राज बब्बर की पत्नी है नादिरा ज़हीर बब्बर। सुप्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन के जीवन पर आधारित नाट्य रचना 'पेंसिल से ब्रश तक' का निर्देशन नादिरा ज़हीर बब्बर ने किया। धर्मवीर भारती की कालजयी कृति 'कनुप्रिया' एवं 'अंधायुग' पर आधारित नादिरा ज़हीर बब्बर द्वारा निर्देशित नाटक है 'इतिहास तुम्हें ले गया कन्हैया'। नादिरा ज़हीर बब्बर द्वारा निर्देशित चर्चित अन्य नाट्य रचनाएँ हैं - 'पेंसिल से ब्रश तक', 'इतिहास तुम्हें ले गया कन्हैया', 'ऑपरेशन क्लाउडबर्स्ट आदि।

'सकु बाई' नाटक का मुख्य पात्र है, शकुंतला (सकु बाई)। शकुंतला 'सकु बाई' नाम से हमारे सामने आती है। आजीविका कमाने के लिए गाँव से शहर में आनेवाली लाखों औरतों की प्रतिनिधि के रूप में सकु बाई का प्रस्तुतीकरण हुआ है। विश्रुत नाटककार नादिरा ज़हीर बब्बर कृत 'सकुबाई' नाटक में उच्च वर्ग के जीवन के विरोधाभास को उजागर किया गया है। बारिश में अपने घर को ठीक करने के बजाय दूसरे के घरों को ठीक करने की एक स्थिति सकुबाई के किरदार में दिखाई देती है। साथ ही मालिकिन के बेटे पामोल को दूध पिलाने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ लगाना और फिर भी दूध नहीं पीना एक रोचक दृश्य रहा। चंद रुपयों के खातिर सकुबाई की मनोदशा परिवार के पालन-पोषण की विवशता को दर्शाती है। वहीं स्वयं के घर में

एक गिलास दूध के पीछे दस हाथों की झड़प गरीबी और विवशता का प्रतीक रही है। यह नाटक हमें सोचने पर मजबूर करता है कि हम में से कितने लोग वास्तव में श्रम की गरिमा का मूल्य जानते हैं और उसका कद्र करते हैं।

सकुबाई सिर्फ एक घर में काम करनेवाली महिला की कथा ही नहीं है बल्कि हर उस महिला की कथा है जो जीवन के कठिन दौर से गुज़रकर भी मुस्कुराना नहीं छोड़ती। नाटक की कथा नारी चेतना से जुड़ी हुई है, यह सकुबाई नामक चरित्र के इर्द-गिर्द घूमती है, जो कि एक नौकरानी है और उसके साथ उसके ही मामा ने बचपन में बलात्कार किया था, बाद में उसकी शादी होती है। लेकिन उसका पति भी उसे अकेले छोड़ देता है, इस बड़े दुख और गरीबी से लड़ती हुई सकुबाई जीवन में हार नहीं मानती वह और लोगों के घरों में काम कर अपनी बच्ची को पालती है और उसे बड़ी लेखिका बनाती है।

सकुबाई हमें अपने घरों में काम करनेवालों के जीवन में झाँकने का मौका देती है। यह नाटक बहुत छोटी उम्र में रोटी कमाने के लिए बाध्य होकर शहर में आई सकुबाई के जीवन और समय को बड़ी दक्षता में दर्शाता है। घर के काम करने के साथ-साथ वह कभी अंतरंग मित्र, विश्वासपात्र, सलाहकार और कभी चौकीदार की भूमिकाएँ भी निभाती है। सकुबाई अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों और कारनामों का विस्तृत ब्योरा स्वयं बहुत सूक्ष्म परिहास के धागों में पिरोकर प्रस्तुत करती है।

इक्कीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक रंगमंच अपने आप में बहुत बड़ा कैनवेस है। इस लंबे काल की नाट्य यात्रा में बहुत सारे उतार-चढ़ाव और कई दिलचस्प मोड़ आये हैं। नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों की अपनी विशेषताएँ हैं। इनकी भाषा की रेंज का फलक अपने आप में अनूठा और बड़ा है। पारिवारिक, राजनैतिक,

ग्रामीण और नगरीय नाटकों में परिवेश के अनुसार भी भाषा अपना कमाल दिखाने में सक्षम है। जहाँ नादिरा जहीर बब्बर की नाट्य रचनाएँ सामाजिक संबंधों की परतें खोलती हैं वहीं मानवीय संबंधों को संवेदना के स्तर तक ले जाकर गहराई तक स्पष्ट करती हैं।

आज ऐसे नाटक लिखे गये हैं तथा लिखे जा रहे हैं जिनकी रचना में नाटककार की दृष्टि 'कला कला केलिए' होती है। किंतु नादिरा जहीर बब्बर के नाटक कलावादी न होकर मानवतावादी हैं। मानव के शाश्वत मूल्यों की स्थापना के उद्देश्य से उन्होंने अपने नाटक लिखे हैं। नादिरा जहीर बब्बर एक सचेतन और विचारशील नाटककार हैं। मानव को अपने जीवन को सुखमय और शांतिमय बनाने की चेतना की प्रतिबद्धता से अनुप्रेरित होकर ही उन्होंने अपने नाटकों का सृजन किया है। उनके नाटकों के आधार पर हम सहज ही उनकी साहित्यिक मान्यता को स्पष्ट कर सकते हैं कि उनकी दृष्टि में 'साहित्य' जनचेतना का संवाहक है। नादिराजी सन् 2001 में संगीत नाटक अकादमी से विभूषित हुईं।

## निष्कर्ष

नादिरा जहीर बब्बर के 'सकुबाई' नाटक में मध्यवर्गीय अभावग्रस्त परिवार का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सहज, तथ्यपरक और आवेगमयी भाषा का प्रयोग 'सकुबाई' नाटक की विशेषता है। हमारे समाज में औरतों का स्थान क्या है ? इस सवाल का उत्तर देना नाटककार का मुख्य उद्देश्य है। एक नारी की दृष्टि में दुनिया को दिखाने के लिए ही सकुबाई हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है।

## संदर्भ

1. सकुबाई नाटक, नादिरा जहीर बब्बर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. साठोत्तरी हिन्दी नाटक, डॉ. के.वी. नारायण कुरुप, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. समकालीन हिन्दी नाटकों में नारी के विविध रूप, डॉ. आसाराम बेवले, समता प्रकाशन, कानपुर।
4. हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ. शांति गोपाल पुरोहित, साहित्य सदन, देहरादून।

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर,  
हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी कॉलेज,  
तिरुवनंतपुरम।

## भीष्म साहनी की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक संवेदनाएँ



**भूमिका** -मानव जीवन की विडंबनापूर्ण परिस्थितियों की पहचान के साथ उनके जीवन की संवेदनाओं को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करने में समर्थ कहानीकारों में अग्रणी हैं भीष्म साहनी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नई कहानी आंदोलन का ज़ोर रचना जगत में अत्यंत शक्तिशाली एवं गतिशील था। इसी समय कहानी साहित्य का कलेवर बदलनेवाले

## ♦ डॉ वीणा.जे

अनेक कहानीकारों में भीष्म साहनी की अपनी पहचान है। सहज ही प्रगतिशील होने के कारण निम्न मध्यवर्ग की विभिन्न समस्याओं को भीष्म जी ने अपनी कहानियों में यथार्थ ढंग से उभारने का प्रयास किया है। समाज के मध्यवर्ग की झूठी मान्यताओं, घुटन, रूढ़ियों, आदि का जीवंत चित्रण उनकी कहानियों में सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति पा सकी है। उनकी कहानियाँ सरल, सहज एवं सपाट

शैली की हैं, जिनमें सामाजिक संवेदानाओं के प्रति सहज लगाव है। कला की अपेक्षा वे वस्तु सत्य को ज़्यादा महत्व देते हैं। इस लेख में भीष्म जी की कहानियों में चित्रित सामाजिक संवेदानाओं का प्रस्तुतीकरण है।

**बीज शब्द** - नई कहानी, युगीन परिस्थिति, संवेदनशील, संघर्ष, विसंगति, मानवीय संबंध, मध्यवर्गीय समाज, विडंबना, विवशता आदि।

### शोध लेख

साहित्य-सृजन के मूल में अनेक प्रेरणादायक तत्व होते हैं, उनमें सबसे मुख्य हैं युगीन परिस्थितियाँ। संवेदनशील साहित्यकार युगीन परिस्थितियों के प्रभाव या दबाव में पड़कर जब सृजन-कार्य की ओर अग्रसर होता है, तो वह तत्कालीन युग के जीवंत इतिहास में परिणत होता है। समाज के दर्पण होने के नाते साहित्य में तत्कालीन समाज प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा ने लिखा है “यदि साहित्य पूर्ण रूपेण सामाजिक एवं राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति करने में असमर्थ है, तो वह निरर्थक है, और इस विचरधारा से जो सहमत नहीं हैं, वे साहित्य रूपी हाथी-दाँत के मीनार में भीरु बनाकर बैठे हुए हैं।”<sup>1</sup> युगीन परिस्थितियों की कोख से ही साहित्यकार जन्म लेता है, वे इन्हीं परिस्थितियों के बीच में पलकर, परिपक्व होकर युगीन इतिहास रचता है। प्रत्येक देश के साहित्य का अपने समय और समाज से अत्यंत गहरा संबंध होता है और हर साहित्यकार इन्हीं संबंधों के आधार पर पाठकों को भूत, वर्तमान और भविष्य से साक्षात्कार कराता है। इस प्रकार साहित्य समाज का मूक इतिहास समाज के सामने प्रस्तुत करता है। क्रिस्टोफर कार्डवेल ने ठीक ही कहा “कला एक सामाजिक प्रक्रिया है।”<sup>2</sup> तत्कालीन साहित्यकार व्यक्ति और समाज के बदलते हुए नये जीवन-मूल्यों की ओर संकेत करता है और स्वदियों के खंडन के लिए समाज को प्रेरित भी करता है।

गद्य साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में कहानी अत्यंत लोकप्रिय है। कहानीकार न केवल इंद्रियों

के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करता है, बल्कि हृदय, बुद्धि तथा सम्पूर्ण संवेदानाओं के साथ भी करता है। भागीरथ दीक्षित के अनुसार “रचनाधर्मी संवेदाना समाज को नूतन अनुभूतियों का नवीन बोध कराती है।”<sup>3</sup> इस प्रकार अपने समय के समाज के प्रति साहित्यकार की आस्था एवं लगन आदिकाल से लेकर आज तक विद्यमान हैं। अपने समाज के प्रति आस्थावान प्रगतिशील कथाकारों की शृंखला में भीष्म साहनी का नाम प्रथम गणनीय है, जिन्होंने अपनी अनुपम संवेदानाओं को व्यक्ति एवं समाज के जीवंत चित्रण में लगाया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नई कहानी आंदोलन का ज़ोर रचना जगत् में अत्यंत शक्तिशाली एवं गतिशील था। इसी समय कहानी साहित्य के कलेवर बदलनेवाले अनेक कहानीकारों में भीष्म साहनी की अलग पहचान है। उन्हींके शब्दों में “मैं ने जिस माहौल में आँखें खोलीं, वह हरा हुआ दौर नहीं था। उसमें हलचल थी, नये-नये विचार समाज को आंदोलित कर रहे थे।”<sup>4</sup> भीष्म साहनी की कहानी यात्रा का श्रीगणेश ‘नीली आँखें’ नामक कहानी के माध्यम से हुआ।

तत्कालीन विख्यात पत्रिका ‘हंस’ में ‘नीली आँखें’ नामक अपनी पहली कहानी प्रकाशित कर साहिनी जी ने अपनी साहित्य सपर्या का शुभारंभ किया। वे ऐसे लेखकों में से हैं, जिनका यह मानना है कि लेखक की अपनी जीवन-दृष्टि अनिवार्य है, प्रभाव चाहे किसी प्रकार का क्यों न हो। अपने समय के अन्य मार्क्सवादी कहानीकारों के समान वे अपने दर्शनों को पाठकों के ऊपर थोप देने के लिए आतुर नहीं, वरन् उनकी दृष्टि संतुलित होती दिखाई पड़ती है। उनकी प्रारंभकालीन कहानियों में घटना-बाहुल्य द्रष्टव्य हैं, तो कालांतर में उनकी तूलिका परिपक्व होती दिखाई पड़ती है। वास्तव में उनकी कहानियाँ रची गयी नहीं, बल्कि घटित हुई सी लगती हैं। ‘चीफ की दावत’ कहानी इसका उत्तम नमूना है। इसमें दो पीढ़ियों का संघर्ष घटित होता दिखाई पड़ता है। बूढ़ी माँ और उसका इकलौता बेटा शामनाथ दोनों

चीफ की पार्टी को लेकर मानसिक संघर्ष महसूस करते हैं। शामनाथ को यही चिंता सताता है कि अपनी बूढ़ी माँ का क्या होगा? अपनी माँ इस समय उसके लिए अड़चन ही हैं। उसके मन में अपने चीफ को किसी न किसी प्रकार रिझाकर तरक्की पाने की इच्छा है। बूढ़ी माँ भी बेटे की खुशी के लिए सभी तरह की पीड़ाएँ सहने के लिए तैयार हैं, क्योंकि वे अपने बेटे से उतना प्यार करती हैं। यही माँ अंत में पार्टी का केंद्र बिन्दु बन जाती हैं। माँ रूपी अड़चन आदर में बदल जाने पर बेटे द्वारा माँ का स्वागत सत्कार इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है- “ओ अम्मी ! तुम ने तो आज रंग ला दिया । .. साहब तुम से इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ ! ओ अम्मी !”<sup>5</sup> कहानी के अंतिम भाग की ये पंक्तियाँ नई पीढ़ियों के स्वार्थ की ओर भी संकेत करती हैं, जो दुनिया देने के बदले सब कुछ लेने के लिए आतुर रहते हैं। “तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा?” इसका उत्तर बूढ़ी माँ जो कहती है, उसमें संपूर्ण विवशता के साथ वात्सल्य भी गूँज उठती है - “मैं बना दूंगी, बेटा बन पड़ेगा, बना दूंगी”<sup>6</sup> इस कहानी में प्राप्त सामाजिक संवेदना अत्यंत बेजोड़ है।

बदलते जीवन-मूल्यों को चित्रित करनेवाली कहानी है ‘खून का रिश्ता’। संवेदनशील कथाकार होने के नाते साहिनी जी ने इस कहानी में बदलते जीवन बोध को, मध्यवर्ग की परेशानियों को, पीढ़ियों के बीच के संघर्ष को, दरार को वाणी देने का प्रयास किया है। ‘खून का रिश्ता’ का मंगलसेन बदलते जीवन-मूल्यों की चक्की में पिस रहे बेचारे लोगों की सजीव तस्वीर है।<sup>7</sup> इसमें लेखक भीष्मजी समाज से यही सवाल उठाते हैं कि घर में गुलाम की तरह रहने, स्नेह, वात्सल्य आदि सहज एवं कोमल भावों को हृदय में दबाये रखने को विवश बूढ़ा, समाज का सदस्य है या नहीं? क्या यही पीढ़ियों का संघर्ष या अर्थाभाव (आर्थिक विषमता) ? बुजुर्ग होने के कारण ही मंगलसेन को क्या-क्या सहना पड़ता है? अपने भतीजे की शादी में भाग लेने की इच्छा

का परिणाम यह हुआ कि उस पर चोरी का आरोप अपमान हुआ जो उसकी बर्दाश्त के बाहर का था। वस्तुतः भीष्म साहनी के लिए मध्यवर्गीय समाज अधिक जाना-पहचाना लगता है। क्योंकि इसकी घटनाएँ आपबीती घटना सी लगती हैं।

नारी संवेदना एवं उसके जीवन-संघर्ष की कहानी है ‘पहचान’। यह अंबाला छवनी में रहनेवाली हरे फाइलवाली चालीस वर्षीय औरत, सात बच्चोंवाली माँ के जीवन-संघर्ष की कहानी है। कहानी का नायक मैं जब उस औरत की लड़की की शादी में शामिल होने के लिए उसके घर गया, और वहाँ जो दृश्य उसने देखा, तो उस औरत के प्रति जो भाव पहले उसके मन पर छाया हुआ था, वह आदर में बदल गया। “जो कुछ मैंने देखा, उससे सब सुनी-सुनाई बातें मन पर से धूल पोंछ गई और मेरे मन में उस औरत के प्रति आदर फूट पड़ा”<sup>8</sup> इन पंक्तियों द्वारा लेखक औरतों के प्रति समाज का हीन भाव दिखाने का प्रयास किया है। भारतीय समाज में नारी की विवशता का चित्र नायिका के शब्दों में ही लेखक व्यक्त करते हैं, “देखिए मेरे साथ बच्चे थे, वीर जी! पाँच को तो मैं खा चुकी हूँ, मगर इस सबसे छोटे को तो मैं आँच नहीं आने दूंगी। मैं बर्तन माँज लूंगी, मगर इसे छाती से लगाए रखूंगी।”<sup>9</sup> वस्तुतः यह कहानी व्यक्ति की पहचान के साथ ही समाज की असलियत की, संवेदनाओं की पहचान भी प्रस्तुत करती है।

‘अमृतसर आ गया’ भीष्म साहनी की कालातीत कलाकृति है। भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय की सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में लिखी गई इस कहानी में विभाजन की वेदना के साथ-साथ जातीय विषमता का दुष्परिणाम भी अत्यंत हृदयहारी ढंग से चित्रित की गई है। तत्कालीन सामाजिक परिवेशों का सीधा सच्चा दस्तावेज़ है, यह कहानी। विभाजन का समाचार मिलने से पहले ट्रेन में सहयात्री अत्यंत आत्मीयता से बातें करते थे। लेकिन वसीराबाद स्टेशन पर दंगों का समाचार मिलते ही इन्हीं सहयात्रियों के बीच तनाव का



वातावरण पैदा होने लगा। दंगे के समाचार के पहले जो मित्रता का भाव इनके बीच था, वह दंगे के समाचार से शत्रुता में बदल गया। इस सहज मनोवैज्ञानिक स्थिति को लेखक ने इस कहानी में अभिव्यक्ति दी है।

‘सिफारिशी चिट्ठी’ कहानी द्वारा भीष्म साहनी जी भारतीय समाज की ऐसी दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं, जहाँ सिफारिश के बिना कुछ भी मुमकिन नहीं। सिफारिश एक नशा बन गयी है, जिसके कारण लोग आज अपनी सुधी खो बैठे हैं। नौकरी में तरक्की मिलने के लिए शिक्षा विभाग के संचालक से त्रिलोकीनाथ को मिलनेवाली सिफारिशी चिट्ठी और उससे उत्पन्न समस्याएँ ही कहानी का कथ्य है। त्रिलोकी का कथन हमारे समाज की स्थिति का पर्दाफाश करने में समर्थ है। त्रिलोकी अपनी पत्नी से कहता है-“आजकल सिफारिश के बिना कौन सा काम होता है?”<sup>10</sup>

अभिशाप्त महानगरीय ज़िदगी को चित्रित करनेवाली यथार्थपरक कहानी है ‘त्रास’। महानगर में ज़िदगी खतरों की अधीनता में है। सुबह घर से निकला व्यक्ति अपने परिवारवालों को कोई गैरेंटी नहीं दे सकता कि वह शाम को सही सलामत घर वापस लौट आएगा। महानगरीय संस्कृति का परिचय इस कहानी में भीष्म जी ने चित्रित किया है। यह अनुभव दिल्ली में सभी के साथ होता है, घृणा के आवेश में कुछ कर बैठो और फिर काँपने लगे।<sup>11</sup> दिल्ली की सड़कों में दिखाई पड़नेवाला त्रास (भय) पूरी कहानी में मुखरित है।

इस तरह साहनीजी की कहानियाँ सूक्ष्मता के साथ सामाजिक यथार्थ और मानवीय संबंधों की संवेदनाओं को अत्यंत गहराई से उकेरती हैं। उनकी अधिकाँश कहानियाँ तत्कालीन समाज की विसंगतियों पर करारा व्यंग्य करनेवाली हैं। मध्यवर्गीय समाज की असलियत का चित्रण जितना उनकी रचनाओं में दृष्टव्य है, उतना अन्यत्र सुलभ नहीं। वस्तुतः मध्यवर्गीय सामाजिक यथार्थ की संवेदना के चित्रण में वे प्रेमचंद से आगे हैं। मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ चित्रण में उनकी जो अभिरुचि

है, उसके कारणों की खोज करने पर इस निर्णय तक पहुँच जाते हैं कि अपने परिवार और साहित्यिक जगत् के व्यक्तिगत अनुभव तथा तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव ही इसके मूल में है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साहित्यिक जगत् ऐसे लेखकों का तकाजा करता है, जो बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तीनों दृष्टियों से प्रतिबद्ध है। ऐसे प्रतिबद्ध रचनाकार थे भीष्म साहनी, जिन्होंने अपनी साहित्य सपर्या से भारतीय समाज का मार्गदर्शन किया। उन्होंने साहित्य सेवा को समाज सेवा का माध्यम बनाया।

### संदर्भ

1. डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, प्रेमचंद परंपरा की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रण, मंगल प्रकाशन, पृ. 38
2. Studies in a dying culture – Christopher Caudwell, p.44
3. भागीरथ दीक्षित, समीक्षालोक, प्रथम संस्करण पृ. 583
4. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर- भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना; वाणी प्राकाशन, दिल्ली पृ. 11
5. भीष्म साहनी- चीफ की दावत: हिन्दी गद्यकोश
6. वही
7. इंद्रनाथ मदान, राकेश वत्स; कहानी और कहानी समीक्षा का मूल्य, राजकमल प्रकाशन, पृ. 267
8. भीष्म साहनी- पहचान, गद्यकोश
9. वही
10. भीष्म साहनी- सिफारिश चिट्ठी
11. भीष्म साहनी -त्रास: हिन्दी गद्यकोश

◆ सह आचार्या,  
हिन्दी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज  
आलप्पुष्पा

drveenaprasad@gmail.com

# समकालीन कविता में भारतीय समाज, संस्कृति, दशा और दिशा



साहित्य और संस्कृति आचरणात्मक एवं आदर्शात्मक सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में एक धरोहर है। यह वर्षों से सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अन्ततः प्रासंगिकता को प्रमाणित

करती आ रही है। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय पृथ्वी पर सामाजिकता और सांस्कृतिक मूल्यों की आधारशिला रख चुका है, जिसकी आधार भूमि पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी गरिमा के साथ खड़ी है। वर्तमान बाज़ारवाद, भौतिकवाद और भूमण्डलीकरण के दुष्प्रभावों से वैश्विक परिस्थितियों में हमारा समाज एक बड़े परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा है। भौतिकवाद लोगों का आदर्श बनता जा रहा है। आज पश्चिमी सभ्यता के कारण प्रभावित दिशाहीनता की ओर बढ़ती जा रही युवा पीढ़ी के लिए भारतीय मूल्यों का आचरण अनिवार्य है, क्योंकि नयी पीढ़ी भटकाव के दौर से गुज़र रही है। समकालीन कवि समाज और संस्कृति के इस बदलते रूप को देखकर चिन्तित हैं। आज व्यक्ति परम्परागत संस्कृति तथा सामाजिकता से दूर भागने लगा है। वह स्वकेन्द्रित होता जा रहा है।

समकालीन कवियों ने सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। मानवीय संस्कृतियों के बीच सहज सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश की है। इससे कविता और जीवन दोनों के प्रति विश्वास बढ़ता है।

‘जिस कागज पर मैंने लिखी कविता / उससे चिड़िया घोंसला बना रही है / कविता की कतरनी पर बैठी यह अण्डे से रही है / कविता बन रही है भाषा / मेरे और उसके बीच।’<sup>1</sup>

आज दलगत और स्वार्थ से भरी राजनीति व्यक्ति के दायरे में भीतर प्रविष्ट हो चुकी है। मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है।

‘वह कौन सी चीज़ है

## ◆ डॉ.पवन कुमार शर्मा

बाहर की देह से दूर  
हवा और सौरमण्डल की  
आदमी की चादर के बाहर दिवारों के अहाते  
में घुसी हुई घट की।’<sup>2</sup>

कुमार अम्बुज की एक कविता ‘एक आदमी जंगल में’ प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त आज की राजनीति की कुटिलता और अवसरवादिता को देखा जा सकता है।

“मगर नहीं कहा उसमें  
शेर से उसकी हिलरशाही के बारे में  
हाथों से अकर्मण्यता के बारे में  
हिरण से कम अक्ली  
सियार से उसके कपार  
या कोयल से उसके कालेपन के बारे में।  
नहीं कहा उसने किसी से भी

ऐसा कुछ  
जो उसे दिक्कत देती  
उसकी उम्र का जंगल काटने में।”<sup>3</sup>  
समाज में व्यक्ति आज अपने अधिकारों के प्रति जागरूक अवश्य है, लेकिन उसके लिए ये अप्राप्त हैं। वह निराशा से ग्रसित है। उसमें भटकाव है।

“खाली हाथ और मरे मन से  
रेत के ऊपर  
आकाश के नीचे  
कुहरे की नदी में  
चित लोटे हुए  
मैं सूर्य मांगता हूँ

मुझे बर्फ मिलती है / सिर्फ शब्द नहीं मिलता।”<sup>4</sup>

आज समाज में व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से जुझता हुआ निराश हो जाता है। उसे लगता है कि कोशिश करने पर भी वह स्वयं टूट जाएगा।

“प्रतिशोध में जलता

स्वयंलित अग्निपिण्ड

कहाँ-कहाँ टकराता जायेगा? तोड़ेगा / टूटेगा”<sup>5</sup>

आज व्यक्ति असामाजिकता के कारण बदलते मूल्यों से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पा रहा है। वह गिरते सामाजिक नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से भी ग्रस्त है। परिणामस्वरूप उसका सनातनी मूल्यों, ईमानदारी और आदर्शों से विश्वास उठता जा रहा है। व्यक्ति की पीड़ा वेदना और अविश्वास दिनोंदिन उठते जा रहे हैं।

“मुक्ति एक झूठ है

बहुत बड़ी हो गई है मेरी पीड़ा

इसको बताना है

इसके अथाह में खो जाने से पहले।”<sup>6</sup>

लीलाधर जगूड़ी अपनी ‘खबरें’ शीर्षक कविता में पीड़ित व्यक्ति का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

“घबराहट की कुण्ठा थी, कायरता थी

विपदा ग्रस्त पीड़ित या मृत व्यक्ति की

असफलता दिखाई जाती है।

मौत में भी।”<sup>7</sup>

आज जीवन की विसंगतियों से घिरे मनुष्य की छटपटाहट इतनी बढ़ चुकी है कि वह हताश और निराश होकर विक्षिप्त सा हो गया है। विषमता युक्त जीवन ने उसे झकझोर कर रख दिया है।

“मौत के कुएँ में

टकराती और गूँजती रहती है

भयानक ध्वनियाँ काटती-पीटती

अतल में गिरी पड़ी पहचान के लिए छटपटाता रहता

है।”<sup>8</sup>

मानवीय मूल्यों के विघटनों ने आम आदमी को तोड़कर रख दिया है। पीड़ा, संत्रास वेदना आधुनिक युग में मनुष्य की पहचान बन गयी है। लीलाधर जगूड़ी कहते हैं कि मौत के बाद भी व्यक्ति को असफल, दीन और लाचार बताया जाता है। अनगिनत लोग भिखारी जैसा जीवन जी रहे हैं।

“रात को कहाँ रहते हैं भिखारी

जंगल में अन्धेरे में, एकान्त में,

या किसी बहुत बड़े कुनबे में,

रात को कहाँ रहते हैं भिखारी”<sup>9</sup>

समकालीन कविता में कवि ने इस विक्षिप्त जीवन की झलक समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष रखी है।

“भिखारी बच्चों को सड़कों पर छोड़ देते हैं

रेलवे स्टेशनों पर छोड़ देते हैं

ताकि ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को वे दिख सकें।”<sup>10</sup>

आज महंगाई के दौर में मेहनत, मज़दूरी करने के बाद भी जब भरपेट भोजन नहीं मिलता, अपने बच्चों को निर्वस्त्र भूखा और बेहाल देखता है तब उसकी मेहनत का क्या अर्थ रह जाता है।

“दिन भर को ढोकर भी

मैं नहीं जुटा पाता हूँ तुम्हारे लिए रोटी मेरे बच्चे

मेरे बच्चे मैं तुम्हारे लिए भरपेट भोजन भी नहीं जुटा

सकता

मैं तुम्हारे लिए तन ढकने के लिए कपड़े नहीं दे

सकता।”<sup>11</sup>

मंगलेश डबराल ने ‘पहाड़ पर लालटेन’ कविता में भूख, बाढ़ और महामारी से ग्रस्त जीवन का यथार्थ चित्रण किया है-

“देखे अपने गिरवी रखे हुए खेत

विलखती स्त्रियों के उतारे गये गहने

देखो भूख से बाढ़ से महामारी से मरे हुए

सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों से

दोनों हाथों से बेशुमार बर्फ झाड़कर

अपनी भूख की देखो।”<sup>12</sup>

मंगलेश डबराल का स्वर क्रान्तिकारी है। यह कविता शोषण से पीड़ित व्यक्ति की कथा कहती है।

“जंगल में औरतें हैं

लकड़ियों के गट्ठर के नीचे बेहोश

जंगल में बच्चे हैं

असमय दफनाये जाते हुए

जंगल में नंगे पैर चलते हुए बुढ़े हैं

डरते खांसते अन्त में गायब हो जाते हैं

जंगल में लगातार कुल्हाडियाँ चल रही हैं

जंगल में सोया है रक्त।”<sup>13</sup>

समकालीन कवि ने जहाँ त्रस्त और पीड़ित भूख और बेकारी का चित्रण किया है वहीं उसकी कलम संगठन शक्ति द्वारा एकता स्थापित करने की बात करती है। 'हम यहीं रहते हैं' कविता में अरुण कमल लिखते हैं-

हमारा यही घर है किराये का हमें कोई दूसरा मकान नहीं है-

“हमारा यही घर है  
हम सब यहीं रहते हैं  
एक दूसरे में गुथे हुए  
हम यहीं रहते हैं।”<sup>14</sup>

वर्तमान व्यवस्था में सामाजिक वैषम्य और विभिन्न सामाजिक विकृतियाँ पनप रही हैं। जैसे-

“एक सम्पूर्ण स्त्री होने से पहले ही  
गर्भाधान की क्रिया से गुज़रते हुए  
उसने जाना कि प्यार

धनी आबादी वाली बस्तियों में  
मकान की तलाश है।”<sup>15</sup>

सामाजिक क्रूरता से पीड़ित, मानवीय सुखों से वंचित नारी का चित्रण गगन गिल ने किया है-

“सूरज चमकता है उसके दफ्तरों के द्वार  
मौसम बदलते हैं उसकी खिड़की से दूर  
हवा नहीं छूती उन्हें कितने ही साल  
पकते हैं बाल धूप के बिना  
दफ्तरों में कैद लड़कियों के।”<sup>16</sup>

समकालीन कविता में स्त्री-पुरुष संबन्ध अपने पूरे संवेग और मांसलता के साथ उपस्थित होकर भी स्त्री को भोग्या मानने की रीतिकालीन अश्लील से कोसों दूर है। प्रेम के उद्दाम क्षणों की अभिव्यक्ति समकालीन कविता में कोई वर्जित क्षेत्र नहीं। जितेन्द्र श्रीवास्तव लिखते हैं-

“मध्य जनवरी की धूप में  
लड़कियाँ चूम रही हैं अपने-अपने प्रेमी का चेहरा  
एक किले के खण्डहरके अलगअलग कोनों में  
विहसता

ठण्ड पिंघल रही है मोम की तरह  
देह की नदी में बह रही है मन की नांव  
कोई सुधि नहीं है किनारे की

उन्हें डर है

किनारे रोक देते हैं बहाव को।”<sup>17</sup>

प्रेम तो शरीर से शुरू होता है, परन्तु वह कभी भी शरीर तक सीमित नहीं रहता। तन से शुरू होकर वह लगातार तन के परे जाने की ओर प्रवृत्त रहता है। सुनीता जैन लिखती हैं-

“न पुरुष आसक्त था स्त्री पे  
न स्त्री आसक्त थी पुरुष पे  
सम्बन्ध किन्तु तन गये थे  
तन की सीमा से परे  
अब जकड में इसकी दोनों  
सोचते हैं करें।”<sup>18</sup>

प्रेम में धोखा खाने के बाद जितेन्द्र श्रीवास्तव लिखते हैं-

“तुम रुकती तो जीवन आकाश हो जाता  
हम दोनों साथ होते तो जीवन का छोर नहीं  
सिर्फ और दिखता

लोग थक जाते ताकते-ताकते  
केवल खुशियों का जलधि विशाल दिखता।”<sup>19</sup>

कामकाजी स्त्री का शरीर ही उसका शत्रु बन गया है। पुरुष कामुकता आज स्त्री के सम्पूर्ण अस्तित्व को तहस-नहस करने की क्षमता के साथ सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर में अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है। स्त्री के लिए उसका शरीर शत्रु बन गया है। 'टायपिस्ट' कविता में पवन करण कहते हैं-

“हम से कोई ऐसा नहीं  
जो उसकी ओर अपने साथियों की  
नज़रें बचा-बचाकर  
उसके सन्तुलित अंगों को  
उत्तेजना को  
अपने अंगों में  
करता न रहता हो महसूस  
उसे इस बात का कतई पता नहीं  
हम उसके साथ कितनी ही बार  
कल्पनाओं और सपनों के

(शेष पृ.सं. 29)



## ढोंगी साधुओं का यथार्थ चित्रण करनेवाला 'कालचक्र'

◆ डॉ.रंजी कोशी

**सार-** डॉ.बालशौरि रेड्डी दक्षिण भारत के एक प्रमुख हिन्दी लेखक हैं। 'कालचक्र' उनका सन् 2002 में रचित एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें उन्होंने धर्म की आड़ में होनेवाले कुकृत्यों का वर्णन किया है। रेड्डी जी ने ढोंगी साधुओं के कलंक भरे असली जीवन को अंकित किया है। संपत्ति को ही सब कुछ माननेवाले लोगों को चुनौती देना और असली धर्म की व्याख्या करना लेखक के उद्देश्य हैं।

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए कई दक्षिण भारतीय हिन्दी लेखकों ने विशिष्ट योगदान दिया है। उनमें डॉ. बालशौरि रेड्डी प्रमुख हैं। वे बीस वर्ष की आयु में ही हिन्दी में लिखने लगे। मूलतः आंध्र प्रदेश के निवासी होने के कारण रेड्डी जी ने तेलुगु में भी लिखा है, लेकिन तेलुगु साहित्य जगत से ज़्यादा वे हिन्दी में प्रसिद्ध हैं।

### साहित्यकार बालशौरि रेड्डी

बालशौरि रेड्डी जी की पहली रचना 'पंचामृत' है। यह एक समीक्षात्मक कृति है। उनकी अधिकांश रचनाएँ सन् 1960 के बाद रचित हैं। इसलिए बालशौरि रेड्डी जी का नाम साठोत्तर हिन्दी लेखकों की कोटि में आता है। उनकी कुशल लेखनी से हिन्दी साहित्य की विविध विधाएँ संपन्न हुई हैं। उनके तेरह उपन्यास हैं - शबरी, ज़िन्दगी की राह, यह बस्ती: ये लोग, भग्न सीमाएँ, बैरिस्टर, प्रकाश और परछाई, स्वप्न और सत्य, धरती मेरी माँ, लकुमा, प्रोफ़ेसर, वीर केसरी, दावानल और कालचक्र। उपन्यास के अतिरिक्त कहानी, समीक्षा, बाल साहित्य, अनुवाद, संपादन आदि विधाओं में भी वे कार्यरत हैं। डॉ.बालशौरि रेड्डी 'बैसाखी' नामक एक ही कहानी संग्रह के द्वारा हिन्दी कहानी साहित्य जगत में चिर प्रतिष्ठित हुए हैं। रेड्डी जी एक

सफल संपादक भी हैं। वे सन् 1966 से 1989 तक चेन्नई से प्रकाशित 'चन्दामामा' बाल पत्रिका के हिन्दी संस्करण के संपादक थे। 'चन्दामामा' के बारे में अभिनव तैलंग ने कहा है -

'चन्दामामा ने मुझे ही नहीं, देश के करोड़ों बच्चों को भारत की संस्कृति, परंपरा और सौन्दर्य से परिचित कराया। उनमें अच्छे संस्कार डाले। बातचीत, बोलने में मधुर, संस्कारी और सहृदय बनाया।'<sup>1</sup> इसके बाद वे कुछ समय तक चेन्नई से प्रकाशित 'दक्षिण भारत,' 'हिन्दी प्रचार समाचार,' 'चमकता सितारा' आदि के संपादक भी थे।

### पुरस्कार

बालशौरि रेड्डी जी की ज़िन्दगी की राह, धरती मेरी माँ, दावानल, कालचक्र, लकुमा आदि पुरस्कृत उपन्यास हैं। उनको गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, सौहार्द सम्मान, महात्मा गान्धी साहित्य सम्मान आदि मिले। वे कई उपाधियों से विभूषित हुए हैं। उनमें कला व संस्कृति संस्था, मथुरा से 'साहित्य वारिधि', पुष्पगिरि पीठाध्यक्ष श्री शंकराचार्य से 'वाङ्मय रत्नाकर', आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी से 'हिन्दी रत्न', साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साहित्य-वाचस्पति' आदि प्रमुख हैं। उनकी समग्र साहित्य सेवा को ध्यान में रखकर सन् 1988 में वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति ने उन्हें डी. लिट की मानद उपाधि देकर सम्मानित किया।

### 'कालचक्र' का कथानक

'कालचक्र' डॉ. बालशौरि रेड्डी द्वारा सन् 2002 में रचित एक सामाजिक उपन्यास है। इसकी कथा इस प्रकार है - संस्कृत पंडित परमशिवम, उनके साले का बेटा बैद्यनाथन, उद्योगपति शंकरन, ढोंगी साधु कृपानंद आदि इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। शंकरन ने बैद्यनाथन को अपने घर में दावत के लिए आमंत्रित

किया। कृपानंद के कोरमंडल होटल के पास स्थित चार - पाँच एकड़ खाली ज़मीन को अपना उस दावत का उद्देश्य था। बैद्यनाथन अपनी गाड़ी में फल, फूल और मिठाइयाँ लेकर कृपानंद के आश्रम में पहुँचा। उन्होंने कृपानंद से कहा - “स्वामीजी, भक्तों के द्वारा प्रदत्त ज़मीन-जायदाद यत्र-तत्र अनुपयोगी पड़ी हुई हैं। यदि सही ढंग से हम कुछ कार्यक्रम अपने हाथ में लें तो आश्रम के कार्यकलापों में विस्तार हो सकता है। आश्रम के पीछे जो ज़मीन पड़ी हुई है, उसमें हम एक संस्कृत और वैदिक पाठशाला खोला सकते हैं।” जो ज़मीन शहरों और नगरों में बेकार पड़ी हुई है, उसमें हम उस-उस स्थान के अनुकूल अस्पताल, कॉलेज, फ्लैट्स या वाणिज्य संबन्धी प्रकल्प स्थापित कर सकते हैं।”<sup>2</sup>

### कालचक्र के द्वारा असली धर्म की व्याख्या

जल्दी से नुंगम्बाक्कम हाई रोड में एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, मंदिर और एक होटल का निर्माण कार्य शुरू हुआ। होटल के उद्घाटन समारोह में प्रधानमंत्री, तमिलनाडु के राज्यपाल, मुख्यमंत्री, स्वामी कृपानंद आदि आये। स्वामीजी को सबने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। कुछ भक्तों ने उनके चरणों का वंदन किया। उद्घाटन के लिए दूरदर्शन, आकाशवाणी और विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं के कर्मचारी आये। फूलों की सुगन्ध से सारा वातावरण महक रहा था। स्वामीजी के लिए इस प्रकार का एक वैभवमय वातावरण जीवन में सबसे पहला था।

स्वामीजी का प्रवचन समाप्त होते ही कुछ श्रद्धालु महिलाओं ने उनका चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया। झुककर प्रणाम करते समय उनकी वेणियों में गूथी चमेली के पुष्पों की सुगन्ध स्वामीजी के नासिका पुटों में फैल गई। आँखें विस्तारित करके उन रमणियों की ओर देखा तो लगा कि पृथ्वी मंडल का सौन्दर्य एकत्रित होकर इन सुन्दरियों की आकृतियों में समाहित हो गया है।

“क्या इन्द्रसभा की रंभा, उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ इनसे अधिक सुन्दर होंगी? नहीं, नहीं यही कारण होगा कि देवराज इन्द्र आदि देवता, गंधर्व,

यक्ष, किन्नर आदि भूतल की नारियों के संसर्ग के लिए लालायित होते रहें।”<sup>3</sup>

कुछ महीनों के अंतर्गत ही बैद्यनाथन करोड़पति बन गया। शंकरन और बैद्यनाथन ने ‘कृपानंद कंस्ट्रक्शन’ नाम से एक संस्थान का निर्माण किया। उनको ज़मीन मुफ्त में उपलब्ध थी, लेकिन अन्य घर निर्माताओं को अधिक मूल्य देकर ज़मीन खरीदनी पड़ी। शंकरन और बैद्यनाथन के दुश्मनों की संख्या बढ़ती जा रही थी, लेकिन स्वामी कृपानंद और सरकारी अधिकारियों से उनका निकटतम संबन्ध होने के कारण कोई भी उनके विरुद्ध आने की हिम्मत नहीं कर सका था। वे जनता के बीच में परोपकारी और संस्कृति के पक्षधर के रूप में लोकप्रिय हुए।

स्वामी कृपानंद तमिलनाडु के बाहर के तीर्थों और धर्मस्थानों में प्रभाषण के लिए जाने लगे। देश भर के धनाढ्य पुरुष, उच्च पदों पर प्रतिष्ठित अधिकारी और राजनीतिज्ञ भी उनके शिष्य बन गये। इसी बीच शंकरन ने बड़ी चालाकी से बैद्यनाथन को कंपनी से अलग किया। स्वामी कृपानंद ने अपने को लौकिक सुख से मुक्त करने का निश्चय किया। शंकरन के द्वारा सताये गये सभी लोगों ने अपनी रक्षा के लिए अदालत का आश्रय लिया। उनको दस साल के कारागार की सजा मिली। उन्होंने परमशिवम से कहा- “मैं समझता हूँ कि जेल की सजा काटकर जब आप लोगों के बीच आऊँगा तो कुंदन बनकर आऊँगा।”<sup>4</sup> उस समय शंकरन का मन वर्षा के बाद के आसमान की भाँति निर्मल था। यहाँ कथा समाप्त होती है।

समाज में धर्म का स्थान रीढ़ की हड्डी के समान है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार ‘धृत्र’ धातु के आगे ‘मन’ प्रत्यय जोड़ने से ‘धर्म’ शब्द बनता है। एम.सी टागगारट ने धर्म को विश्व सामंजस्य का आधार मानते हुए लिखा है - “धर्म स्पष्ट रूप से एक मानसिक स्थिति है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसे हम अपने और विश्व के बीच सामंजस्य की आस्था पर आधारित एक भावना कह सकते हैं।”<sup>5</sup>

डॉ. बालशौरि रेड्डी ने अपने 'कालचक्र' उपन्यास में ढोंगी साधुओं के कलंक भरे असली जीवन को अंकित किया है। उपन्यास के प्रारंभिक भागों में कृपानंद एक सच्चे साधु थे। जब उनके पास ज़्यादा धन आया तब उनका चरित्र बदल गया। कुमारी पुष्पा तिवारी की राय में - "पैसा कमाने का लालच धर्म को उसके स्तर से गिराने में भी हिचकिचाता नहीं है। फलतः आश्रम नशाखोरी और व्यभिचार के अड्डे बन गये है। ऐसे साधुओं का नमूना कृपानंद और उनका आश्रम है।"<sup>6</sup>

पुराने ज़माने में साधु सारी लौकिक सुख - सुविधाओं को त्यागकर जंगल में तपस्या करते थे। लेकिन स्वामी कृपानंद जैसे ढोंगी साधु ऊँची - ऊँची अट्टलिकाओं में रहते हैं, साथ-ही-साथ महँगी गाड़ियों में सवार करते हैं। उनके भोजन में अनार, खरबूजा, बादाम, काजू, मक्खन, जूस, कुल्फी आदि विशिष्ट फल और खाद्य पदार्थ हैं। भक्तों से कुछ लोग मिलकर इन साधुओं के लिए एक ट्रस्ट का निर्माण करते हैं। ट्रस्ट के द्वारा मुफ्त में गरीब लोगों के बच्चों को स्कूलों और कॉलेजों में दाखिला देते हैं और गरीब मरीज़ों को इलाज देते हैं। इस प्रकार ढोंगी साधुओं का यश चारों तरफ फैल जाता है। जीवन की सब सुख - सुविधाएँ मिलते समय धीरे-धीरे वे आत्मीयता की पवित्रता को छोड़कर लौकिकता की ओर आकृष्ट होते हैं। यहाँ लेखक हमें यह अवबोध देते हैं कि दुःख आते समय इन ढोंगी साधुओं की शरण में न जाकर ईश्वर से प्रार्थना करें तथा गरीबों-मरीज़ों को पर्याप्त सहायता करें ताकि उन दुःखी लोगों को शान्ति मिलने के साथ हमें भी सुख और खुशी मिलें।

'कालचक्र' में सन्यास को एक नौकरी के रूप में स्वीकार करते हुए कुछ लोगों को हम देख सकते हैं। कुछ गुंडे, चोर, डाकू, लंपट और आवारा भी साधु का वेश धारण कर आश्रम में घुस गये। क्रमशः आश्रम तस्करी और मादक पदार्थों के अड्डे बन गये। एक दिन स्वामी कृपानंद बेंगलूर के लालबाग में प्रवचन

के लिए गये। वहाँ उनको ठहरने का प्रबन्ध एक उद्योगपति के उद्यान गृह में किया गया था। नींद के लिए जाते वक्त स्वामी जी का विचार देखिए -

' 'स्वागत समिति का अध्यक्ष स्वामीजी को सादर उनके लिए विशेष रूप से प्रबन्ध किए शयन कक्ष में ले गए। स्वामीजी ने कक्ष के भीतर कदम रखते हुए चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई तो उन्हें शंका होने लगी कि वास्तव में वह इस धरती पर है या परलोक में। पल भर के लिए उन्हें ऐसा एहसास हुआ कि उन्होंने सन्यास ग्रहण कर बहुत ही बुद्धिमानी का काम किया। देश-भर के धनाढ्य-पुरुष, उच्च पदों पर प्रतिष्ठित अधिकारी और राजनीतिज्ञ भी उनका चरण स्पर्श कर रहे हैं। वे कहाँ से कहाँ तक पहुँच गए! चरण पृथ्वी पर और सिर आकाश पर लगता है कि सन्यास वृत्ति ने पृथ्वी और आकाश के बीच की दूरी को नाप लिया हो।"<sup>7</sup>

सन्यास को नौकरी के रूप में स्वीकार न करके दूसरों के दुःख को दूर करने के मार्ग के रूप में स्वीकार करना उचित है। सन्यासी को वासना से मुक्त होकर मानव सेवा को जीवन लक्ष्य मानकर जीना समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है।

बालशौरि रेड्डी जी की राय में धर्म दृश्य-श्रव्य माध्यमों के द्वारा प्रचार करने का उपकरण नहीं है। स्वामी कृपानंद बेंगलूर में जाने के पूर्व उनका वृत्तान्त पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगा -

' 'पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा प्रचार और प्रसार के जितने भी माध्यम हो सकते थे, सबमें स्वामीजी के आगमन का समाचार छपा और उनके जीवन संबन्धी कई चमत्कारपूर्ण वृत्तान्त भी रंगीन पृष्ठों में प्रकाशित हुए। ख्याति प्राप्त लेखक, वैज्ञानिक, समाज-सुधारक, दार्शनिक एवं पत्रकारों ने भी स्वामीजी के संबन्ध में अपने उद्गार व्यक्त किए थे, जिन्हें पढ़कर बेंगलूर के नगरवासी स्वामीजी के दर्शन के लिए पलक-पांवडे बिछाकर प्रतीक्षारत रहे।"<sup>8</sup>

(शेष पृ.सं. 21)



## किन्नर व्यथा-हम नर हैं या नारी ?

♦ डॉ. मिनी. ए.आर

हमारे देश के संविधान में सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों का प्रावधान है। किन्नरों का अस्तित्व आदिकाल से है। किन्नर (थर्ड जंडर) का मतलब न नर है, न नारी हैं। अंग्रेज़ी में इसे न्यूटर जंडर कहा गया है। हिंदी में इनके लिए किन्नर, कन्नडा में जोगप्पा, गुजराती में पवैया आदि शब्द प्रचलित हैं। इन्हें ब्रह्मन्तला, शिखंडी भी कहे गये हैं। मनुष्य जाति के पृथ्वी पर होने के समय से ही हिजड़ों का भी इतिहास रहा है। महाभारत और रामायण के पन्नों को पलटेंगे तो पता चलेगा कि वहाँ पर हिजड़ों का इतिहास रहा है। पहले किन्नर वर्ग राजाओं एवं महाराजाओं के घर पर नाचने और गाने का काम किया करते थे, साथ ही शादी व बच्चे के जन्म के मौके पर भी वह नाच-गाना करते थे। किन्नरों के संबंध में कहा जाता है कि किन्नर के आसपास दैविक शक्ति का आभा मंडल व्याप्त रहता है। किन्नर कभी किसी को शाप नहीं देते। वे केवल आशीष देना जानते हैं। कोई भी किन्नर कभी नहीं चाहता कि अगले जन्म में वह फिर किन्नर ही पैदा हो।

हमारे देश के संविधान में भी सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों का प्रावधान है। प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के सारे अधिकार प्राप्त हैं। शिक्षा की कमी, अन्य व्यवसाय जुड़ने से सीमित अवसर, आर्थिक तंगी आदि अधिकांश किन्नरों को यौनकर्म की ओर ले जाता है। इसी कारण इन्हें सामाजिक सम्मान नहीं मिल पा रहा। इसी कारण इन्हें समाज में अवांछित माना जाता है। लोगों को इन्हें देखने, समझने व परखने के लिए अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा, जो अश्लीलता का चश्मा लगाकर इनके बारे में देखते एवं सुनते हैं।

हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा आदि के माध्यम से थर्ड जंडर समुदाय की संवेदना को प्रस्तुत किया जा चुका है। थर्ड जंडर समुदाय के जीवन से संबंधित विविध पक्षों को प्रस्तुत करने की दिशा में अनेक काव्य लेखन का उदय हुआ है। राज किशोर राजन की 'हिजड़ा कहते' कविता में हिजड़ा होने के कारण समाज से सहन करनेवाले अपहासों का चित्रण किया गया है। "“हिजड़ा कहते” में दुखों की एक नदी बहती है, जिसे समुद्र में मिलना नहीं होता, जल भी अपेय दुर्गन्धयुक्त हो गया है”<sup>1</sup> इसी तरह पूनम प्रकाश की 'साँझ' कविता में भी वह अपने आप पूछती है कि मेरा अपराध कोई बताये तो सही, मैं बस एक किन्नर? आखिर इंसान क्यों नहीं?

रवि रश्मि अमुभूति की 'हिजड़े' कविता में समाज को ये आह्वान है कि हिजड़े समाज का हिस्सा है, उनको भी प्यार करना, हिजड़ों को मान, सम्मान सदा अपनी ही तरह देना, उनसे कुछ लेना नहीं, बस उन्हें तो देना ही देना। खुश होकर उनका आशिर्वाद तो तुम लेना ही लेना है। सत्याशमी की 'अर्धनारीश्वर' में कहा गया है कि किन्नर तो क्या, ईश्वर की भूल या रहस्यमय प्रकृति का प्रतिफल है? अंत में यह व्यक्त किया गया है कि प्रकृति का उपहार है, अर्धनारीश्वर। प्रेमलता की 'हिजड़ा' कविता समाज से किन्नरों के प्रति होनेवाले तिरस्कारों पर लिखी गयी है। सभी नर-नारियों के समान ही एक माँ ने नौ महीने अपने गर्भ में रखकर ही उन्हें जन्म दिया है, बार-बार हिजड़ा कहकर गाली मत देना है। एक किन्नर की माँ की व्यथा के प्रति हम चिंतित भी नहीं। सुशीला जोशी ने माँ की व्यथा व्यक्त की है। घर में पैदा हुए नपुंसक को देखकर फूट-फूट कर मैया रोती है। सबके मुँह से हाय शब्द निकलते हैं। सभी लोग इन्हें देखकर हँसी उड़ाते हैं, ये सब एक माता कैसे सहन



करती हैं? देश आज़ाद हो चुका है, लेकिन किन्नर लोग आज तक हैं, जहाँ के तहाँ। लोग कुत्तों को भी प्यार करते हैं, अधिकार देते हैं, लेकिन एक किन्नर होने के नाते लोग इन्हें एक कुत्ते का स्थान भी नहीं देते हैं। परमनाथ शर्मा की 'इनका भी सम्मान करो' कविता में समाज से किन्नरों का सम्मान देने का आह्वान है। वे कहते हैं कि ये समाज के अभिन्न अंग हैं। इनका भी सम्मान करना है। क्यों वे उपेक्षित हो गये जग में, इनका भी गुणगान करना है। समाज से वे लोग कहाँ जायेंगे? वे युग-युग से उपेक्षित हैं, अब स्वयं अपने को एक अभिशाप मानते हैं। गीतिका वेदिका की 'अधूरी देह' में किन्नरों की व्यथा हमें देखने को मिलती है। वे कहती हैं कि

“अधूरी देह क्यों मुझे बनाया  
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया  
नहीं नारी, मैं और नर नहीं

विवश हूँ, मूक हूँ, पत्थर नहीं हूँ।”<sup>2</sup>

कल्पना बघेल ने अपनी कविता में जिंदगी का दर्द सुनाती हैं। वे कहती हैं कि इस दुनिया में जीने की इच्छा नहीं है, इस दुनिया में किन्नरों के दर्द सुनने के लिए कोई भी नहीं। वे आधुनिक समाज में विमर्श की माँग मात्र हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना करती हैं, कहती हैं, 'हे ईश्वर मैं भी इंसान हूँ, मैं लक्ष्मी, मैं पार्वती, मैं पायल हूँ, मैं काजल हूँ, मैं अर्धनारीश्वर, मैं ईश्वर।' सच कहें तो वे ईश्वर हैं, इंसान हैं, वे सबके समान होते हैं। हीनभावना या नीच उन्हें क्यों कहते हैं? अपने से अलग क्यों करते हैं? अत्याचार क्यों करते हैं? आवेश में कोई पाप भी नहीं करना है। अविनाश मिश्र कहते हैं कि “करो न पाप तुम आवेश में इनमें भी तो जान है।”<sup>3</sup>

अधिकतर हिजडे समाज में हाशिए पर जिंदगी व्यतीत कर रहे हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी निम्न स्तर की है। समाज में उनकी अस्वीकार्यता इनकी प्रतिभा को उभरने नहीं देती। अब थर्ड जंडर की स्थिति में कुछ बदलाव आया है। वे अपनी अस्मिता और अधिकारों को लेकर गंभीर हुए हैं। पूर्ण रूप से बदलाव नहीं आया

है। आज थर्ड जंडर अन्य कामकाजी महिलाओं के साथ काम करती हैं। पर, लोगों की सोच में परिवर्तन नहीं हुआ है। वे समाज में सम्मान के साथ जीना चाहते हैं। लेकिन समाज की मानसिकता अब भी उनके प्रति रूढ़िवादी बनी हुई है। साहित्य जगत अब किन्नरों के लिए तूलिका चलाता रहता है। किन्नर विलाप यहाँ-वहाँ हम सुन सकते हैं। नीरज मेहता की 'किन्नर विलाप' देखिए-

“हाँ मैं हूँ किन्नर पहन लेता हूँ  
चूड़ी,बिंदी,गज़रा,पायल  
ओढ़ लेता हूँ चुनरी  
किंतु खुद की देह देख

समझ नहीं पाता मैं पुरुष हूँ या स्त्री।”<sup>4</sup>

स्त्री-पुरुष व्यक्तित्व के कारण थर्ड जंडर न कभी समाज की मुख्यधारा का अंग बन सके हैं, और न साहित्य का। लेकिन संघर्ष अब भी जारी है। संवैधानिक लड़ाई में बहुत कुछ जीत लिया है, लेकिन सामाजिक लड़ाई जारी है। समाज में किन्नरों की व्यथा पर कई कविताएँ लिखी गयी हैं।

### संदर्भ

- 1 राज किशोर राजन, हिजडा कहो, थर्ड जेंडर और साहित्य; डॉ.एम.फिरोज़खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.263
2. गीतिका वेदिका,अधूरी देह, क्वालिटी बुक पब्लिशिंग एण्ड डिस्ट्रिब्यूटेर्स; 2019; पृ: 68
- 3 अविनाश मिश्र, किन्नर भी इंसान है, अनुसन्धान पब्लिकेशन, कानपुर, पु.118
- 4.नीरज मेहता, किन्नर विलाप, वाड्मय बुक्स, अलीगढ़; 2017; पृ.118

◆ असिस्टेंट प्रोफसर

हिंदी विभाग

पय्यन्नूर कॉलेज, एडाट

फोन -9496466656



## उषा प्रियंवदा के 'नदी' उपन्यास में स्त्री जीवन

♦ डॉ. राखी एस. आर

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसंबर, 1930 को कानपुर, उत्तरप्रदेश में हुआ था। उन्होंने उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हासिल की। उषा प्रियंवदा की गणना उन कथाकारों में होती है, जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलापन की स्थिति को पहचाना और व्यक्त किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में एक ओर आधुनिकता का प्रबल स्वर मिलता है। उषा जी के कथा साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र हैं, और आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलेपन, ऊब आदि का अंकन करने में उन्होंने अत्यंत गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है। उनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं - कहानी संग्रह - 'ज़िंदगी' और 'गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', 'मेरी प्रिय कहानियाँ'; उपन्यास- 'पचपन खंभे लाल दीवारे' (1961), 'रुकोगी नहीं राधिका' (1967), 'शेषयात्रा' (1984), 'अंतर्वशी' (2000), 'भया कबीर उदास' (2007), 'नदी' (2013) आदि। सन् 2007 में केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा पद्मभूषण डॉ.मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित हुईं।

आकाश गंगा उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'नदी' की नायिका है। आकाश गंगा का जीवन विवाह के पश्चात पति और बच्चों के बीच में नदी की तरह ही अविरल बह रहा था। गंगा के पति डॉ.गगनेन्द्र सिन्हा एक तुनक मिजाज के इन्सान थे। उन्हें अपनी सुन्दर एवं वाचाल पत्नी का किसी से मिलना-जुलना पसंद नहीं था। विदेश में रहते हुए गंगा अपनी दोनों बेटियों-झरना और सपना- के साथ खुश थी। बेटे के जन्म के बाद तो गंगा की खुशियाँ दो गुनी हो जाती हैं। वह स्वयं उसका नाम भविष्य रखती है, किंतु उसके पाँच वर्षीय बेटे की मृत्यु हो जाती है, जिसका सारा दोष डॉ.सिन्हा

गंगा के सिर मढ़ देते हैं। गंगा जब अपनी सौतेली बहन से मिलने वाशिंगटन जाती है तब डॉ.सिन्हा घर बेचकर बेटियों सहित भारत आ जाते हैं। पति और बच्चों के बिना अकेली और असहाय बनी गंगा का विदेशी धरती पर अकेली गुज़र करना आसान न था। अक्सर विवाहित स्त्रियाँ घर, गृहस्थी और परिवार की देखभाल करने में स्वयं के लिए समय ही नहीं निकाल पातीं। बहन के पास रहते हुए गंगा महसूस करती है कि कितना कुछ है संसार में देखने के लिए, जानने के लिए। वह अपने को स्वतंत्र महसूस करती है, किंतु पति, बच्चे और गृहस्थी से उसे कभी अपने बारे में कुछ भी सोचने का मौका ही नहीं मिलता था।

एक हफ्ते बाद अपने घर पहुँचने पर उसे लगता है मानो उसके पैरों तले की ज़मीन ही खिसक गई हो। पूरा घर खाली था और बिक चुका था। घर की चाभियाँ उसके पास होने से वह दरवाज़ा खोलती है और एक रात इसी घर में रहने का निर्णय करती है। इस खाली घर में उसके मृत बेटे की स्मृतियाँ ताज़ी हो जाती हैं और यहाँ से शुरू होता है गंगा के संघर्ष का सफ़र। गंगा का मकान अर्जुन सिंह खरीद लेते हैं और उन्हें पता चलता है कि डॉ.सिन्हा बिना गंगा को साथ लिए ही भारत चले गए हैं। उन्हें मालूम होता है कि डॉ.सिन्हा गंगा के पासपोर्ट और वीज़ा भी अपने साथ ले गये हैं। पारिस्थितिक गंगा अर्जुन सिंह की सहायता लेती है, किंतु अपनी मर्जी और अपनी शर्तों पर। गंगा एक अस्पताल में नौकरी के लिए आवेदन देती है, जहाँ उसकी मुलाकात एरिक से होती है। एरिक ने ही उसके बेटे भविष्य का इलाज किया था, किंतु बाल ल्यूकीमिया ग्रस्त बेटे भविष्य को वह नहीं बचा सका था। एरिक अपना सम्पूर्ण जीवन कैंसर रिसर्च और उपचार में अर्पित करना चाहता है। अर्जुन सिंह अनेक प्रकार के प्रलोभनों द्वारा गंगा को बांधे रखना

चाहते हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि गंगा का अर्थ ही है मुक्त विचरण करना। गंगा अर्जुन सिंह के साथ रहते हुए भी अपना निर्णय लेने के लिए मुक्त थी।

गंगा कुछ समय तो अर्जुन सिंह के साथ रहती है, लेकिन अर्जुन सिंह के अवैध कारनामे का पता चलते ही पहले तो वह स्तब्ध रह जाती है, किंतु जल्द ही वह अपना सामान समेट वहाँ से निकल जाती है। गंगा प्रवीण बहन के घर जाती है किंतु दरवाज़े पर ताला होने से वहीं बाहर ही बैठ जाती है और तब अपनी स्वतंत्रता को वह महसूस करती है। गंगा को डॉ.सिन्हा अपने हाथों की कठपुतली मान बैठे थे, हर काम में पाबन्दी, जो करो सब डॉ. सिन्हा की मर्जी का, क्योंकि वे पति हैं। फैशन इंस्टीट्यूट से ग्रेजुएशन करनेवाली गंगा का जीवन मात्र पति, बच्चों और घर की देखभाल तक ही सीमित हो गया था। गंगा प्रवीण बहन के घर में ताला होने से किसी होटल में जाने के लिए टेक्सी करती है, किंतु होटल जाने की बजाय अपने पुराने घर जाती है और संयोगवश ताला खुल जाता है। वहीं रात बिताती है। सुबह होने पर घर से निकलते समय वह डाक का डब्बा देखती है और उसे अपना ग्रीनकार्ड मिलता है, हर्ष की एक लहर उसके पूरे शरीर को झकझोर जाती है।

गंगा न तो भारत जाती है, न अर्जुन सिंह के पास जाना चाहती है। इसलिए वह अपनी पड़ोसिन मार्था से किराए के मकान के लिए बात करती है और मार्था उसे एक फ्लैट दिलवाती है, जहाँ रूम मेट के रूप में गंगा की एरिक से मुलाकात होती है। गंगा और एरिक कुछ दिनों साथ रहते हुए एक दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं। गंगा सोचती है कि एरिक के साथ की अंतरंगता डॉ.सिन्हा और अर्जुन सिंह की से कितनी भिन्न है। एरिक गंगा को भारत लौट जाने और डॉ.सिन्हा से समझौता करने की सलाह देता है। गंगा त्रासदी से भरे अपने जीवन से मुक्ति चाहती है। पति द्वारा मिली प्रताड़ना एवं अर्जुन सिंह के धोखे से उसका जीवन बर्बादी की कगार पर आ जाता है। ऐसे में एकमात्र एरिक ही था जिससे उसे सच्चा प्रेम मिला था। गंगा

और एरिक साथ तो रहना चाहते हैं, किंतु रह नहीं पाते, क्योंकि एरिक के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बाल कैंसर का उपचार खोजना था। एरिक और गंगा एक साथ अपने-अपने देश के लिए निकलते हैं, किंतु गंगा एरिक का पता नहीं ले पाती है।

गंगा के भारत आने पर उसके सास-ससुर एवं बेटियाँ बहुत खुश होती हैं। गंगा पूरी तरह से अपने परिवार में रम जाती है। किंतु डॉ.सिन्हा उसे हमेशा के लिए अपनी ज़िन्दगी से निकाल चुके थे। गंगा सोचती है कि क्या धीरज और क्षमा शब्द मात्र स्त्री पर ही लागू होते हैं। गंगा की सास की मान्यता थी कि प्रत्येक स्त्री के पास गहने अवश्य होने चाहिए जो उसके भविष्य के लिए एक इन्वेस्टमेंट होता है, किंतु गंगा के अनुसार औरत का इन्वेस्टमेंट उसकी शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता ही है। कुछ दिनों बाद गंगा को अपनी गर्भवती होने का पता चलता है। उसे यह विश्वास था कि यह बच्चा एरिक का है। साथ ही उसे यह भी मालूम होता है कि डॉ.सिन्हा अपने किसी सहयोगिनी के साथ विवाह करना चाहते हैं। गंगा अपनी दोनों बेटियों को सास-ससुर के पास छोड़ कैलीफोर्निया में प्रवीण बहन के घर चली जाती है, जहाँ वह प्रवीण दम्पति की सेवा करती है। गंगा के गर्भवती होने की बात जानकर प्रवीण बहन उसे अपना बच्चा निस्संतान कैथरिन बसबी को देने की सलाह देती है। गंगा अपने बच्चे के अच्छे भविष्य की आश में ऐसा ही करती है।

प्रवीण बहन की मृत्यु के बाद प्रवीण जी से समझौता कर गंगा उनकी सेवा करती रहती है। प्रवीण जी अपना सब कुछ अपने बेटे यशवंत के नाम कर देते हैं और खेत का एक टुकड़ा मात्र ही गंगा को मिलता है। गंगा उसी खेती की आय से अपना गुज़र करती है। अंततः इस उपन्यास में एक नया मोड़ आता है और इस मोड़ पर गंगा की अब तक भुगती सभी यातनाओं, तनाव, दुःख-दर्द का अंत हो जाता है। उसे मिलता है अपना और एरिक का पुत्र स्टीवेन। स्टीवेन अचानक अपना ही एक दिन गंगा के पास आता है और उसे माँ

कहकर बुलाता है। वह एक रात अपनी माँ गंगा के पास रहता है और दोनों एक दूसरे से अपना दुःख-सुख साझा करते हैं। स्टीवेन अपने कैंसर के बारे में बताता है कि उसे ल्यूकीमिया हो गया था, किंतु उसे पिता एरिकसन ने बचा लिया और अब वह बिलकुल स्वस्थ है। इस प्रकार नदी उपन्यास की नायिका आकाशगंगा का समस्त जीवन उलझन भरा ही रहता है। उसे अपनों का प्यार न मिला, न ही साथ। किंतु उसके समस्त दुखों, पीड़ाओं का अंत तब हो जाता है जब उसे अपना पुत्र मिलता है।

‘नदी’ की गंगा मात्र उपभोग्य स्त्री नहीं है। स्त्री जीवन के अनेक संदर्भ उसकी जीवन यात्रा में समाहित हैं। नदी अपने आप में जीवन का सहज स्वभाव है और स्त्री का नदी के स्वभाव से जुड़ना, नये सिरे से मुक्त और सहज होना है। वह अपने लिए सम्मान, मानवीय प्रतिष्ठा और गरिमापूर्ण जीवन चाहती थी। विषम स्थिति में विदेशी ज़मीन पर अवैध नागरिक की तरह छोड़ दी गई गंगा की अपनी पीड़ा, आत्मलांछना और अपराध भावना का और छोर नहीं था, किन्तु वह हिम्मत से काम लेती है। गहन दुख जिसमें अपनों के स्नेहिल स्पर्श की ज़रूरत थी, गंगा आश्रय से भी वंचित कर दी जाती है। सब उसे छोड़ जाते हैं, उसकी ज़रूरत किसी को नहीं। यह क्षणिक आवेग उसे मृत्यु की ओर ले जाता है, किन्तु वह बच जाती है। यहीं से शुरू होती है, एक साधारण लड़की गंगा की जिजीविषा और आत्मसम्मान की यात्रा। विदेशी ज़मीन पर मरने-जीने के लिए, अवैध नागरिक की तरह छोड़ दी गई गंगा, अपने जीवट को धारणकर गंगाजल की तरह ही अपने जीवन बहने के रास्ते पाती है। उसे ढेर सारे प्रश्न, अथाह दुख, उलाहने, रिश्तों के घाव, मोह ममता के धागे तोड़ते-जोड़ते हैं, पर वह विवेक से काम लेती है। वह अपने स्वाभिमान और सम्मान के प्रति सजग स्त्री है। उपन्यास के तृतीय खंड में वह किसान के रूप में एक आत्मनिर्भर, मज़बूत स्त्री बन जाती है। वृद्धावस्था की ओर जाती गंगा, साग

सब्जी, फूलों की खेती में तल्लीन जीवन को एकदम शांत, समतल भूमि के रूप में देखती, संतुष्ट दिखती है।

उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास एक लंबे दिवास्वप्न की तरह है जिसमें तिलिस्मी, चमत्कारी अनुभवों के साथ-साथ अनपेक्षित घटनाएँ भी पात्रों के जीवन से जुड़ी हुई हैं। एक ओर यह मृत्यु के कगार पर खड़े परिपक्व व्यक्ति की तर्क विरुद्ध, असंगत, अपने से उम्र में आधी युवती के प्यार में डूब जाने की कहानी है, पर साथ-साथ एक अविकसित, अप्रस्फुटित, अव्यावहारिक स्त्री के सजग, सतर्क और स्वयंसिद्ध होने की भी यात्रा है। यात्रा का बिम्ब उषा प्रियंवदा के हर उपन्यास में मौजूद है। चाहे वह कैंसर से उबरने की यात्रा हो या अपने से विलग हुई सन्तान के लौटने तक की।

उषा जी ने सरल, सुस्थिर, संयत एवं बोधगम्य खड़ी बोली का प्रयोग किया है। लघु वाक्य-विन्यास, कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग भाषा का सरल रूप है। शब्दों के सामाजिक प्रयोगों से उषा प्रियंवदा के साहित्य की भाषा में कसावट विद्यमान रहती है। उषा जी ने भावात्मक, विवरणात्मक तथा व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। भावुकता, माधुर्य और प्रवाह उनकी शैली की विशेषताएँ हैं। उनकी सहज कथन शैली तथा यथार्थ का चित्रण बेजोड़ है। कमज़ोरियाँ हर व्यक्ति में होती हैं, कोई भी पूर्ण नहीं। स्त्री भी अपनी कमज़ोरियों को जानती है, पर कुछ कमज़ोरियाँ आदत और बेसहाय व लाचारीपन में शामिल हो जाती हैं। व्यक्ति इस क्षेत्र में समाज की रूढ़ सनातन धारणाओं एवं मान्यताओं में अनास्था रखता हुआ मानसिक संघर्षों से ग्रस्त रहता है। सामाजिक मान्यताओं को प्रधानता देने पर जिस आत्मिक कष्ट और अंतर्द्वंद्व को लेकर वह जीता है वह उसके व्यक्तिगत क्षेत्र में हानिकारक सिद्ध होता है। अतृप्त वासनाएँ व्यक्ति के जीवन को कुंठित कर पूर्ण रूप से उसे मानसिक रोगी बना देती हैं। भारतीय समाज प्राचीन संस्कृति एवं आदर्शों में इतना आस्थावान है कि उनकी विपरीत संस्कृति, मनोभाव, आचरणवालों को उचित मान्यता नहीं देता।

मुख्य रूप से देखा जाए तो इस उपन्यास में कलात्मक परिपक्वता, संवेदनशीलता और उत्तर आधुनिक बोध की परिपूर्णता दिखाई देती है। साथ ही इसमें प्रवासी भारतीय स्त्री के जीवन के संत्रास और अकेलेपन से उत्पन्न छटपटाहट और मानसिक यंत्रणा, अर्थाभाव के कारण चाहते हुए भी कुछ न कर पाने की विवशता आदि अपने पूर्ण यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई है। लेखिका ने आदि व्यक्ति, परिवार तथा स्त्री-पुरुष के संबंधों, नारी की स्थिति आदि को अत्यंत प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। उपन्यास के केंद्र में स्त्री की सुख-दुखात्मक स्थितियाँ, अंतर्द्वंद्व, आकांक्षा तथा पुरुष से उसका संबंध आदि विषय हैं। साथ ही उससे जुझती समस्याओं का एवं संवेदनाओं का मार्मिक विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसके साथ ही साथ द्विभाषीय राष्ट्र जैसे भारत और अमेरिकीय जीवन शैली की विरोधी संस्कृतियों की टकराहट भी इनमें स्पष्ट रूप से उभरकर आती है, जिसके चलते पारिवारिक जीवन-शैली में तनाव व टकराहट की स्थितियाँ आ जाती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि स्त्री-पुरुष के संबंध में बिखराव के साथ-साथ मानव जीवन में उत्पन्न परिस्थियों से रू-बरू करवाया गया है।

### संदर्भ ग्रन्थ

1. नदी, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2017
2. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास, डॉ. पुरुषोत्तम दबे।
3. नगरीकरण और हिंदी उपन्यास, क्षमा गोस्वामी।
4. साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में नारी, डॉ. सौ मंगल कप्पीकेरे।
5. उपन्यास और यथार्थवादी लेखक; डॉ. त्रिभुवन सिंह, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली; प्रथम संस्करण 2006

◆ अतिथि अध्यापिका,  
हिन्दी विभाग,  
अय्यंकाली मेमोरियल आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज,  
कुर्योटुमला, पुनलूर, कोल्लम।

### (पृ.सं.15 के आगे)

बेंगलूर में स्वामी कृपानंद के भक्तों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ गयी। भक्त धार्मिक भावना से इस प्रकार भरे हुए थे, मानो स्वामीजी ने कोई जादू-टोना करके अचानक उनमें परिवर्तन ला दिया हो। वास्तव में धर्म दृश्य-श्रव्य माध्यमों के द्वारा प्रचार पाने का साधन नहीं है। ईश्वर भक्ति व्यक्ति के मन में सहज ही उत्पन्न होती है। वह बाज़ार में बिकने योग्य वस्तु नहीं है। पीछे धार्मिक नेताओं की पाखण्डता और स्वार्थ-लाभ भरे हुए हैं। दृश्य-श्रव्य माध्यमों के द्वारा अपनी कार्य-कुशलता का झूठा प्रचार करनेवाले ढोंगी धार्मिक नेताओं को समाज से दूर करना मानव कल्याण के लिए आवश्यक है। विज्ञान और तकनीकी के विकास के कारण आधुनिक मानव से सभी आदर्श और मूल्य नष्ट हो गये हैं। वह धन, यश और प्रतिष्ठा के चक्कर में समय की रफ़्तार से बचना चाहता है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि संपत्ति को सब कुछ माननेवाले लोगों को चुनौती देना बालशौरि रेड्डी जी का उद्देश्य है। धर्म लोगों में सच्चे गुणों का विकास करने का मार्ग है। 'कालचक्र' में लेखक ने धर्म की आड़ में होनेवाले कुकर्मों का पर्दाफाश किया है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अभिनव तैलंग, मन को भिगोता-भाता समृद्ध झरने-सा व्यक्तित्व, युग स्पंदन पत्रिका, जनवरी-मार्च 2010, पृ.सं. 14
- 2 डॉ. बालशौरि रेड्डी, कालचक्र, पृ.सं. : 27-28
- 3 वही पृ.सं.: 35-36
- 4 वही पृ सं : 135
- 5 एम.सी टागगारट, स्मी डोगमोर ऑफ रिलीजियन, पृ.सं.3
- 6 पुष्पा तिवारी, काल पर कला की विजय का अप्रतिम सृजन: कालचक्र, केरल ज्योति, अगस्त 2010, पृ.सं.31
- 7 डॉ. बालशौरि रेड्डी, कालचक्र, पृ.सं. 91-92
- 8 वही पृ.सं.89

सहायक प्राध्यापिका  
हिन्दी विभाग  
कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनतिट्टा।



## टेलिविज़न विज्ञापन में विपरीत लिंगियों के सकारात्मक चित्रण का अध्ययन

♦ डॉ.जितेंद्र सिंह

**सारांश** -ट्रंसजेंडर या विपरीतलिंगियों को मीडिया, विशेषकर फिल्मों और विज्ञापन फिल्मों में सदा से ही एक विशेष छवि में कैद कर रखा गया है। उन्हें हमेशा ही नकारात्मक भूमिका में दिखाया जाता है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में बनी हिंदी फिल्मों में व विज्ञापन फिल्मों भी उनकी छवि बदली है। आज वे सड़कों पर नाचनेवाले छोटे-मोटे अपराध करनेवाले या हंसी के पात्र से कहीं बढ़कर एक ममतामयी, परोपकारी, समाज सुधारक व समाजिक कार्यकर्ता की छवि में देखे जा सकते हैं। विज्ञापन फिल्मों में आये इस बदलाव की एक वजह समाज में इनके प्रति बदल रही सोच है। विज्ञापन कम्पनियाँ चाहे मुनाफा के लिए ही सही संवेदनशील मुद्दों को स्थान तो दे रही हैं, इससे उनके प्रति लोगों का नज़रिया भी बदल रहा है। इस शोध के लिए पिछले कुछ वर्षों में बनी ऐसी विज्ञापन फिल्मों को अध्ययन के लिए चुना गया है जो विपरीतलिंगियों पर आधारित हैं व प्रमुख सोशल मीडिया साइट, यूट्यूब पर उपलब्ध हैं। इनमें विक्स भीमा ज्वैलर्सशाप, साईट आई हॉस्पिटल, पैथ लब की विज्ञापन फिल्मों को शामिल किया गया है। ये सभी फिल्में विपरीतलिंगियों को एक सकारात्मक भूमिका में प्रस्तुत करती हैं।

**मुख्य शब्द** - ट्रंसजेंडर, एल जी बी टी, विज्ञापन फिल्में, टी वी कर्माशयलस।

### परिचय

परलिंगी विपरीतलिंगी समुदाय या एलजीबीटी के सदस्यों को मीडिया विशेषकर फिल्मों ने सदा से ही एक नकारात्मक भूमिका में प्रस्तुत किया है। विपरीतलिंगी समुदाय में किन्नर समलैंगिक ट्रंस व क्वॉयर आदि सम्मिलित हैं। पिछले कुछ वर्षों में विपरीत लिंगियों पर आधारित सबसे ज़्यादा बीभत्स और खौफनाक भूमिका

महेश भट्ट द्वारा निर्देशित फिल्म 'सड़क' में चरित्र अभिनेता सदाशिव अमरापुरकर ने निभायी जिसे देखकर दर्शकों के रोंगटे खड़े हो गये थे और वे इस समुदाय के प्रति समानता का भाव रखने के बजाए इनसे और भी ज़्यादा नफरत करने पर विवश हो गये। इससे मिलती जुलती भूमिका अभिनेता विजय राज ने संजय लीला भंसाली की हालिया रिलीज़ फिल्म गंगुबाई कायिवाडी में निभायी। ऐसी अनेक फिल्में हैं जिनमें विपरीत लिंगियों को वर्षों से एक विशेष छवि में कैद कर रखा था। या तो उन्हें नकारात्मक भूमिका में दिखाया जाता रहा है या फिर लाल बत्ती पर नाचते या भीख माँगते। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में कुछ प्रयोगधर्मी निर्माताओं ने विपरीत लिंगियों की छवि को सुधारने के लिये प्रयास किये हैं। इसका परिणाम है तमन्ना दरमियान शबनम मौसी या वेलकम टू सज्जनपुर जैसी बेहतरिन फिल्में, जिन्होंने पहली बार विपरीतलिंगियों को मुख्य भूमिका में प्रस्तुत किया व उनके प्रति लोगों के नज़रिये को बदलने की कोशिश की। महेश भट्ट की फिल्म 'तमन्ना' में एक किन्नर को एक दूधमुँही बच्ची को अपनाते हुए दिखाया है जिसे उसके अभिभावक कचरे के डिब्बे में फेंककर चले जाते हैं। वहीं 'शबनम मौसी' एक सच्ची कहानी थी, मध्य प्रदेश की एक विधान सभा से चुनाव जीतकर विधायक बननेवाली देश की पहली किन्नर की। बधाई दो व शुभ मंगल, ज़्यादा सावधान जैसी फिल्मों ने रूपहले पर्दे पर पहली बार समलैंगिकों की समस्याओं को बड़ी ही खूबसूरती और संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया। यासीन बातुल व नसीर ने अपने शोध पत्र में बताया कि बॉलिवुड फिल्मों में विपरीतलिंगियों को एक विशेष छवि में कैदकर रखा जाता है व उसी छवि में

प्रस्तुत किया जाता है। आम तौर पर उन्हें वेश्यावृत्ति करते या फिर उन्हें सड़कों पर भीख माँगते छोटे-मोटे अपराध करते व सड़कों पर नाचनेवाले के तौर पर दिखाया जाता है।

हाल ही में कुछ विज्ञापन फिल्मों भी आयीं, जो विपरीत लिंगियों के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखती हैं। विज्ञापन उद्योग का एलजीबीटी से जुड़े मामलों पर ध्यान आकर्षित करना समाज में आये बदलाव का प्रतिबिम्ब है। 'सीट बेल्ट क्रू' नामक एक विज्ञापन में लाल बत्ती पर एयर होस्टेस के अवतार में किन्नरों की एक टोली लोगों का ध्यान आकर्षित करती है व उन्हें अपने अनोखे अंदाज़ में सीट बेल्ट बाँधने की सलाह देती है। यह सिर्फ अकेला ऐसा विज्ञापन नहीं है जो विपरीत लिंगियों को सकारात्मक तरीके से दिखाता है। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जहाँ विपरीत लिंगियों के लिए सिनेमा या मीडिया द्वारा बनाई गई छवि को तोड़ते हैं। डार्इन्स गलॉकमेन व वॉर्डलॉ का मानना है कि समलैंगिक चरित्र पिछले कुछ वर्षों में मीडिया की मुख्यधारा में नज़र नहीं आए। लेकिन पिछले कुछ समय से ये छवियाँ काफी ज़्यादा दिखने लगी हैं पहले अगर उन्हें दिखाया भी जाता था तो वे एक छवि में कैद थे।

आजकल यह देखने को मिलता है कि कुछ ब्राण्ड पिछले कुछ समय से विपरीतलिंगियों को अपने विज्ञापन अभियानों में ज़्यादा स्थान दे रहे हैं। यह सच है कि इस समुदाय के लोगों को इन विज्ञापन फिल्मों में सकारात्मक भूमिका में प्रस्तुत करने से इनके प्रति लोगों का नज़रिया भी बदला है।

टाटा चाय व हेवल्स प्रमुख ब्राण्ड हैं जो समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाते हैं। समाजिक चेतना के लिए बनाए गए इनके बहुत सारे विज्ञापन विभिन्न समाजिक समस्याओं को इंगित करते हैं। ये उन लोगों के लिए एक मिसाल बन सकते हैं जो विज्ञापन के माध्यम से समाजिक दायित्व का निर्वाहण करना चाहते हैं। इसके अलावा लोए लिंटस जैसी विज्ञापन कम्पनियाँ

गौर करने योग्य हैं जिन्होंने विज्ञापन नीति के इस प्रभावशाली पहलू को उजागर किया। वॉर्डलॉ 1996 के अनुसार पिछले कुछ दशकों में कुछ संस्थाओं ने समलैंगिकों को अपने विज्ञापन में सामान्य युवाओं की तरह प्रस्तुत किया। 1994 में स्वीडन की एक कम्पनी आईकेईए द्वारा प्रदर्शित संचालित टीवी विज्ञापन एक और उदाहरण है, जिसमें लोगों ने समलैंगिकों को एक सकारात्मक भूमिका में देखा। यूएसएडी ने एक विज्ञापन में एक समलैंगिक जोड़े को पहली बार डार्इनिंग टेबिल खरीदते हुए दिखाया जिसमें वे काफी समृद्ध व फैशनेबल प्रतीत होते हैं।

इस शोध के मुख्य उद्देश्य हैं, टी वी विज्ञापनों में विपरीतलिंगियों के चित्रण का अध्ययन करना, टी वी विज्ञापन में विपरीतलिंगियों की समस्याओं के प्रस्तुतिकरण का अध्ययन करना, टी वी विज्ञापन में विपरीतलिंगी समुदाय के सकारात्मक प्रस्तुतिकरण से दर्शकों पर होनेवाले प्रभाव का अध्ययन करना आदि।

### साहित्य पुनरवलोकन

बिलर्ड व झैंग (2022) के अनुसार डिजिटल तकनीकी के आगमन ने प्रिंट मीडिया, फिल्म व टेलिविज़न में विपरीतलिंगियों के वर्णन में संख्यात्मक वृद्धि के साथ-साथ गुणात्मक वृद्धि भी की है। एलजीबीटी समुदाय का सबसे प्रभवशाली वर्णन सोशल मीडिया व डिजिटल मीडिया के माध्यम से आया है। मोकारस्की व अन्य (2019) के अनुसार मीडिया में विपरीतलिंगियों के चित्रण में वृद्धि हुई है जिसने एलजीबीटी समुदाय की पहचान बनाने व उनकी जानकारी बढ़ाने व उनके रोल मॉडलिंग में भी अहम भूमिका निभायी। एलजीबीटी का चित्रण ही इस समुदाय को मुख्यधारा से जोड़ने या समाज में उनकी स्वीकारिता बढ़ाने में मददगार होगा। उन्हें विज्ञापन फिल्मों में शामिल करना एक तरह से सामाजिक स्वीकारिता को स्थापित करता है। इससे इनके आत्मसम्मान में एक सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। ये झूठे व भ्रमित करनेवाली जानकारियों व सूचनाओं का एक

महत्वपूर्ण योगदानकर्ता है। अधिकांश पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों में प्रयोग की जानेवाली तस्वीरों में मुख्यता शारीरिक रूप से स्वस्थ व सामाजिक रूप से आदर्श व्यक्तित्व को ही लिया जाता है। विपरीत लिंगियों के बारे में गलत धारणा को बढ़ावा देने से लोगों के दिमाग व उनके सोचने की शक्ति पर असर पड़ता है। पिछले कुछ सालों में विपरीत लिंगियों ने विभिन्न विज्ञापन फिल्मों के माध्यम से मुख्य धारा में आने का रास्ता बना लिया है। (तिलक जी सिंह डी, 2019)

विपरीत लिंगी समुदाय को मीडिया में अक्सर गलत तरीके से या उनकी छवि को गलत तरह से प्रस्तुत किया जाता रहा है। ट्रांस जेंडर समुदाय को संयुक्त रूप से अमेरिकी समाज में काफी पक्षपात झेलना पड़ता है और वर्तमान समय में मीडिया में उनका प्रस्तुतीकरण उनकी नकारात्मक छवि को सद्दृढ़ करता है। 1975 से लेकर 2013 के मध्य तक दिखाये गये करीब 12 उदाहरण जिनमें समाचार स्टोरी, विज्ञापन और फिल्मों को एक अध्ययन के लिए चुना गया, जिन्हें विपरीत लिंगियों के प्रस्तुतीकरण में बरती गई शुद्धता व निष्पक्षता के आधार पर विश्लेषित किया गया। लगभग सभी नमूनों में यह पाया गया कि इनमें ट्रांस समुदाय को नकारात्मक दृष्टि से प्रयोग किया गया है। ज़्यादातर नमूनों में उन्हें हँसी के पात्र के रूप में दिखाया गया है या फिर उनके संघर्ष का मज़ाक बनाया गया है। ये सब उनके खिलाफ बनाई गई गलत धारणाओं व नकारात्मक छवि को सुदृढ़ बनाते हैं। (लॉरेन एम व टेलर जे, 2018)

हरमर जेड व सीजेंक (2020) ने पाया कि अमेरिका के प्रमुख बॉडीकेयर ब्रांड पैंटीन का एक विज्ञापन विपरीत लिंगियों के लिए सहयोग की अपील करता है जिसमें दिखाया गया है कि कुछ समलैंगिक जोड़े नाच रहे हैं, स्क्रीन पर एक संदेश लिखा आता है कि मुझसे नफ़रत मत कीजिए। क्योंकि मैं समलैंगिक हूँ। यह विज्ञापन लोगों से उन्हें स्वीकार करने के लिए

नहीं कहता है अपितु वह उनसे नफ़रत न करने की अपील करता है।

### शोध प्रविधि

इस शोध को करने के लिए कंटेंट एनालिसिस विधि का प्रयोग किया गया है, जो मीडिया के संदेशों को विश्लेषित करने की एक महत्वपूर्ण विधि है, जिसमें टेक्स्ट आवाज़, चलचित्र, फोटो आदि का विश्लेषण किया जाता है। इस अध्ययन के लिये प्रमुख सोशल मीडिया मंच यूट्यूब पर प्रकाशित विज्ञापन फिल्मों में से कुछ चुनिंदा विज्ञापन फिल्मों को लिया गया, जिनमें विपरीतलिंगी समुदाय के लोगों को प्रमुख भूमिका में रखा गया है। इस शोध के लिए चार विज्ञापन फिल्मों को चुना गया है।

### शोध की सीमाएँ

इस शोध को और भी ज़्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए, इसके दूसरे पहलू पर चर्चा करना भी महत्वपूर्ण होता। इसके लिए, सर्वेक्षण विधि का प्रयोग कर लोगों से इन विज्ञापन फिल्मों के प्रभाव पर जानकारी भी इकट्ठा की जा सकती थी। उनसे पूछा जा सकता था कि क्या इन फिल्मों को देखने से विपरीत लिंगियों के प्रति उनकी सोच व नज़रिये में कोई परिवर्तन आया है। इसके निष्कर्ष से इस शोध के नतीजे और भी ज़्यादा विश्वसनीय हो जाते।

### निर्णय एवं परिचर्चा

#### 1 पैथकाईण्ड लैब

फिल्म में एक लैब वर्कर को अपने दिन भर का काम निपटाके एक बच्ची का ब्लड सैम्पल लेने के लिये जाना है। उसे अपने घर जाने के लिए पहले ही काफी देर हो चुकी है क्योंकि उसकी खुद की बेटी के लिये उसे जन्मदिन का केक ले कर घर जल्दी पहुँचना है। वह जल्दी से उस पते पर पहुँचता है और महसूस करता है कि वहाँ रहनेवाले लोगों के बारे में आस पड़ोस के लोगों की प्रतिक्रिया अच्छी नहीं है। वह घर का दरवाज़ा खटखटाता है और जैसे ही दरवाज़ा खुलता है, एक



किन्नर को देखकर चौंक जाता है। वह उसे अंदर बुलाता है और उस बच्ची की कथा सुनाने लगता है। अंत में उसे खाने के लिए कुछ मीठा देता है। यह कहकर खाने के लिए आग्रह करता है कि आज इस बच्ची का जन्मदिन है, क्योंकि आज ही के दिन यह इस परिवार का हिस्सा बनी। वह लैब कर्मी बच्ची के ब्लड सैम्पल लेकर चला जाता है। फिर वह अचानक वापस लौटता है और अपनी बेटी के लिए खरीदा गया केक लाकर उन लोगों को दे देता है। इस फिल्म में दिखाया गया है कि इंसानों से कहीं ज़्यादा ममता व संवेदनाएँ किन्नर रखते हैं जो इंसानों के फेंके गए बच्चों को सड़क से उठाकर ममता की छाँह देते हैं। यह विज्ञापन फिल्म किन्नरों के प्रति सम्मान पैदा करता है व मीडिया द्वारा बनायी गयी उनकी नकारात्मक छवि को तोड़ता है।

## 2 विक्स टच ऑफ़ केयर

इस विज्ञापन फिल्म में एक लड़की गायत्री मुख्य भूमिका में है जिसकी उम्र लगभग 12 साल है और वह एक बस में सफर कर रही है। वह अपने बचपन की कहानी को याद करती है कि कैसे उसकी माँ की मौत के बाद उसे उसकी माँ ने गोद लिया। वह अपनी माँ के साथ बिताये पलों को याद कर रही है। जो भावनात्मक लगाव उसे अपनी माँ से है वह उसके लिये सबसे अहम है। क्योंकि जो कठिनाइयाँ व सामाजिक तिरस्कार उसकी माँ ने उसके लालन-पोषण के दौरान झेला वह उसका अहसान कभी भी नहीं चुका सकती। फिल्म के क्लाइमेक्स तक गायत्री की माँ की पहचान को छुपाया जाता है और क्लाइमेक्स में उसे उजागर किया जाता है। उसकी माँ एक किन्नर है, जिसकी पहचान है गौरी सावंत। वह अपनी कहानी याद ही कर रही है कि बस रुकती है और वे दोनों एक बोर्डिंग स्कूल में पहुँच जाते हैं। फिर गायत्री की माँ उसे वहीं छोड़कर चली जाती है। फिल्म के अंत में वह बच्ची बड़ी ही मासूमियत से एक सवाल पूछती है। वह कहती है मेरी सिविक्स की किताब सबके लिए समान अधिकारों की बात कहती है तो मेरी माँ को वह

अधिकार क्यों नहीं मिलता। यह 'विज्ञापन फिल्म' गौरी सावंत नामक समाजिक कार्यकर्ता व विपरीत लिंगियों के अधिकारों के लिए लड़नेवाली लोकप्रिय किन्नर गौरी सावंत की असली कहानी पर आधारित है जो एक वेश्या की बच्ची को गोद लेती है ताकि वह बड़े होकर वेश्या न बने। यह फिल्म भी एक किन्नर की ज़िदगी के साकारात्मक पहलू पर रोशनी डालती है।

## 3 शार्प साईट आई हॉस्पिटल आओ कुछ अच्छा देखें

उक्त फिल्म की कहानी एक लाल बत्ती पर केंद्रित है जहाँ एक कार खड़ी है। उसमें एक आदमी हरी बत्ती होने का इंतज़ार कर रहा है। अचानक उस आदमी की नज़र दूर से आ रहे एक हिजडे पर पड़ती है। उसे देखकर वह असहज सा महसूस करता है और तुरंत अपनी गाड़ी का शीशा उपर कर लेता है। लेकिन वह हिजडा उसकी गाड़ी के पास आता है और उसके शीशे पर दस्तक देता है। गाड़ीवाला मुँह सिकोड़कर उसे आगे जाने को कहता है। लेकिन वह वहाँ से नहीं हटता और उस गाड़ीवाले को कुछ इशारा करता है जिसे वह समझ नहीं पाता। जल्दी ही उसे समझ में आ जाता है कि हिजडा उसे सीट बेल्ट पहनने के लिए आग्रह कर रहा है। उसे तुरंत अपनी गलती का अहसास होता है और उसे धन्यवाद देता है। यह फिल्म हिजडों पर बनी सभी किवदंतियों को तोड़ती है कि वे सिर्फ सड़कों पर भीख ही नहीं माँगते, बल्कि दूसरों को अच्छी शिक्षा भी दे सकते हैं।

## 4 भीमा ज्वैलर्स

भीमा ज्वैलर्स की यह फिल्म पिछले दिनों काफी चर्चा में रही, जो सोशल मीडिया में वाइरल भी हुई, जिसमें मीरा सिंघानिया मुख्य भूमिका में है जिन्हें एक ट्रांसवुमन के तौर पर दिखाया गया है जो कि एक मर्द के शरीर में कैद एक औरत है जो पैदा तो एक मर्द के रूप में हुई लेकिन वह खुद को एक औरत ही समझती है और बड़े होकर औरत ही बनना चाहती है। समाज की सभी पाबंदियों को तोड़ते हुए माँ-बाप उसे एक लड़की की तरह पालते हैं

और अंत में उसकी शादी कर देते हैं, उसे अपने सपने को पूरा करने में पूरा सहयोग देते हैं। लैंगिक भेदभाव से गुज़र रहे सैंकड़ों लोगों के लिए यह फिल्म एक आदर्श है जो उनकी मनोदशा को बड़ी ही खूबसूरती के साथ समझाने का प्रयास करती है। समाज में न जाने ऐसे कितने लोग हैं जो इस मनोस्थिति से गुज़र रहे हैं और समाज व परिवार के डर से अपनी पहचान को उजागर नहीं करना चाहते ।

### निष्कर्ष

दृश्य व श्रव्य माध्यम दर्शकों के दिमाग में अपनी छाप छोड़ते हैं। किसी मीडिया संदेश को बार-बार देखने से लोगों की सोच में परिवर्तन होता है व समाज में बदलाव आता है। शुरुआत से ही मीडिया, विशेषकर फिल्म व टेलिविज़न प्रोग्रामों में विपरीत लिंगियों की एक नकारात्मक पहचान दी है। उन्हें हमेशा से एक ही छवि में कैदकर के रखा गया। उस छवि को सुधारने की कोशिश कभी नहीं की गई। लेकिन पिछले कुछ दिनों में इनकी स्थिति में बदलाव आया है। बॉलिवुड फिल्मों व टेलिविज़न एड फिल्मों ने पिछले कुछ दिनों में विपरीत लिंगियों की छवि को तोड़ने में एक अहम भूमिका निभायी है। उन्हें काफी सफलता के साथ-साथ लोगों का समर्थन भी मिला है। ये फिल्में विपरीत लिंगियों को समाज में एक समान्य व्यक्ति की तरह प्रस्तुत करती हैं। यह भी समझाने का प्रयास करती हैं कि उन्हें भी समाज में पूरे सम्मान के साथ अपनी ज़िंदगी जीने का अधिकार है। मीरा सिंधानिया व गौरी सांवत जैसे लोग समाज में प्रेरणा के स्रोत हैं। ऐसे और लोगों की सच्ची कहानियों पर आधारित फिल्मों या एड फिल्मों से भी समाज में जागरूकता आएगी व लोगों की सोच में परिवर्तन होगा।

### संदर्भ:

1. विज्ञापन में लिंग रूढ़िवादिता: वर्तमान शोध की समीक्षा, स्टेसी लैंडरेथ गू और योगोस सी, 'ज़ोटोस' विज्ञापन का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 2016.
2. त्साई डब्ल्यू एस, एडवर्टइज़िंग एण्ड सोसाइटी रिव्यू, 2010

3. मोकासर्की, रिचर्ड एण्ड किंग, रोबिन एण्ड बटलर; संचार संस्कृति और आलोचना; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2019.

4. यासीन जेड़, बटूल एस और नसीर आई; जी एम सी आर, 2020

5. टूवर्ड ए ट्रांसजेंडर क्रिटिक ऑफ मीडिया रिप्रेज़ेंटेशन; थोमस जे बिलार्ड और एरिक झांग, जे सी एम एस; 2022

6. ऑफ लाइन और ऑन लाइन मीडिया में ट्रांसजेंडर प्रतिनिधित्व; एल जी बी टी क्यू युवा दृष्टिकोण; मैकइन रॉय एलबी, क्रेग एस एल, सोशल एनवायरन, 2015

◆ सहायक प्रोफेसर  
जर्नलिज़म, फिल्म और  
क्रिएटिव आर्ट विभागलौली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी  
जलन्धर।  
फोन-9897784288

## सही उत्तर चुनें

### ◆ डॉ. पी. लता

1. 'शौरसेनी अपभ्रंश' से विकसित आधुनिक आर्य भाषा कौन-सी है?  
(क) मराठी (ख) पूर्वी हिन्दी  
(ग) सिन्धी (घ) पश्चिमी हिन्दी
2. 'बिहारी' की बोली कौन-सी है?  
(क) अवधी (ख) भोजपुरी  
(ग) खड़ीबोली (घ) मेवाती
3. 'उर्दू' किसी भाषा का शब्द है?  
(क) नेपाली (ख) पुर्तगली  
(ग) तुर्की (घ) अरबी
4. 'उर्दू' के प्रथम कवि कौन हैं?  
(क) औरंगाबादी वली (ख) बंदे नवाज़  
(ग) इंशा अल्लाखाँ (घ) सैयद गैसूद ख्वाजा

(शेष पृ.सं. 48)

## छात्र जीवन पर राजनीतिक प्रभाव 'अपना मोर्चा' के सन्दर्भ में



♦ आतिरा बाबू

'अपना मोर्चा' काशीनाथ सिंह का युवा आंदोलन पर पहला और प्रामाणिक उपन्यास है। हिंदी के आलोचक और पाठक इसे नया उपन्यास कहते हैं। युवा पीढ़ी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में किस प्रकार

अपने सन्तोष, आक्रोश, दुख, दर्द और अकेलापन के साथ मौजूद व्यवस्था के खिलाफ खड़ी है, यही उपन्यास का तथ्य है। उपन्यासकार के लिए छात्रों के आंदोलन तमाशा नहीं, उनके जीवन के अनिवार्य अंग हैं। उपन्यासकार ने छात्रों के प्रति अपने लगाव, ममता, आत्मीयता, ईमानदारी तथा बेरहमी के साथ छात्र शक्ति की वकालत भी की है। उपन्यासकार एक ओर छात्रों की संगति होने की बात करता है और दूसरी ओर समूची समाज व्यवस्था के परिवर्तन की आकांक्षा भी व्यक्त करता है।

'अपना मोर्चा' छात्रों के आंदोलन से संबंधित होने के कारण इसमें राजनैतिक प्रभाव का होना सहज है। भारतीय समाज में भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक शोषण आज़ादी के बाद बढ़ते गये। शासन, प्रशासन तथा सरकारी कार्यों में राजनीति स्वार्थ की पूर्ति के लिए होने लगी। हमारे नेता अक्सर झूठ और सुविधा की राजनीति करते आये हैं। नियम पहले बनाये जाते हैं और नेता उन्हें तोड़ जाते हैं। वे लोग न आम जनताओं के बारे में और न ही मेहनत के बारे में कभी भी सोचते हैं। "हम कुछ छोटी-मोटी बातें जानना चाहते हैं, समझना चाहते हैं मसलन एक आदमी सारी ज़िंदगी जी तोड़ मेहनत करता है, फिर भी गरीब ही क्यों रहता है? जब खाने को इतना मौजूद है तो लोग भूखों क्यों मरते हैं? जब सारा शहर रंग बिरंगे कपड़े से भरा पड़ा है तो लोग नंगे क्यों हैं? जब इतना ज्ञान इतनी किताब है तो लोग जाहिल और मूर्ख क्यों हैं? जिसे सुख कहते हैं, वह क्या चीज़ है। यह

कानून यह संविधान किसने बनाया है?"<sup>1</sup> ये सब सवाल छात्र खुद से और समाज से पूछना चाहते हैं, परंतु जवाब ढूँढने का तरीका उन्हें पता भी नहीं।

कॉलेज के लड़के भाषा को लेकर आंदोलन कर रहे हैं और प्रोफेसर अपनी-अपनी आर्थिक स्थितियों के बारे में चर्चा कर रहे हैं। उन्हें आंदोलन से कोई मतलब नहीं। फिर भी किस भाषा को इस्तेमाल करना और किस भाषा में बातचीत करना है, इस विषय को लेकर अध्यापकों और नेताओं के बीच चर्चा हो रही है। लेकिन जवान लड़कों को उन लोगों पर कोई विश्वास नहीं है और वे नाराज़ भी हैं। मध्यवर्गीय परिवार के छात्रों की मनोदशा यह है कि विश्वविद्यालय में देश के कोने-कोने से लड़के आते हैं और चाहते हैं कि उन्हें जीना सिखाए। लेकिन वहाँ का पाठ्यक्रम एकदम पुराना है। "समीक्षा के मानदंड पर एक निबंध लिखिए, पुष्टिमार्ग का महत्व समझाते हुए अष्टछाप के कवियों का परिचय दीजिए, अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद के अंतर का मूलभूत आधार समझाइए। क्या इस तरह के प्रश्न करते हुए जबकि हमारी मानसिक हालत ऐसी हो।"<sup>2</sup> उनकी पढ़ाई में रोज़गार पाने की कोई शिक्षा नहीं दी है, न उनमें इतनी हिम्मत कर दी है कि वह किस प्रकार के रोज़गार को तलाश लें।

विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले अधिकांश लड़के-लड़कियों को यह नहीं पता है कि उनके माता-पिता किस हालत में उन्हें पढ़ाने भेजते हैं, लेकिन बात यही है कि पढ़ाई के इस ढंग को बदलना पड़ेगा। क्योंकि "अब तक इस पढ़ाई से यह हो रहा है कि हम पढ़ते हैं और माँ-बाप के खिलाफ हो जाते हैं। अपने गाँव घर के खिलाफ। यह पढ़ाई हमसे हमारे ही, हमारे ही कुनबे का आदमी छीन लेता है।"<sup>3</sup> अपने मन के विरोध, ईर्ष्या, आक्रोश, मज़बूरी आदि से उत्पन्न प्रतिरोध की मानसिकता

का दस्तावेज़ उपन्यासकार ने छात्रों के द्वारा पाठकों के सामने प्रस्तुत कर दिया है।

सरकार और सरकार की भाषा के प्रति छात्रों को गुस्सा है। अधिकारियों और नेताओं की बेईमानी के कारण लड़के बेचैन हो रहे हैं। वे जुलूस एवं आंदोलन शुरू करने के इंतज़ार में हैं। शहर ने छात्रों का इतना बड़ा जुलूस नहीं देखा है और जुलूस अजीब ढंग से एकदम शांत है। आम आदमी को लगता है, इस आंदोलन का उसकी ज़िन्दगी से कुछ लेना-देना नहीं है। अचानक जुलूस बलपूर्वक बन गया। पुलिस लड़कों को आम कुत्ते के जैसे पीट रही है और लोग बारजे पर खड़े तमाशा देख रहे हैं। लड़के यदि बचने के लिए उनके दरवाज़े की ओर भागते हैं तो वे दरवाज़े बंद कर लेते हैं। वे यह भी नहीं समझने की कोशिश करते हैं कि छात्र अपने शौक के लिए आंदोलन नहीं कर रहे हैं। परंतु उनके मन में एक बात बैठी है कि ये लड़के ज़ाहिल, निकम्मे और कमज़ोर हैं। छात्रों को अपने इन नेताओं पर गुस्सा है, जिन्होंने आंदोलन में अपनों की तरजीह दी है जिन्होंने शहीद होने या विज्ञापन के लिए अपने को सहज ही पुलिस के हाथों में डाल दिया है। उन्होंने नेताओं को कई मौकों पर पुलिस अधिकारियों के साथ हंसते-बोलते, उनके साथ चाय पीते देखा था। यह भी देखा था कि इस मौखिक सुलहनामे का पुलिस की मार पर कोई असर नहीं पड़ा है। उसके बाद शहर में कर्फ्यू लगा दिया जाता है।

खूँखार मौसम की तरह छात्रों की हालत भी खराब हो गयी है। मैदान में लड़कों की सभा हो रही है। कोई किसी से नहीं बोल रहा है। अचानक एक छोटा सा लड़का पूरे छात्र लोगों के सामने आकर भाषण देता है। उसका भाषण सुनकर अन्य छात्र एवं लड़कों को यह महसूस हुआ है कि उनके, खुद के भीतर एक ऐसा नेता है जो भारतीय समाज के पूरे छात्र संगठन को नेतृत्व करने में सक्षम है। “भाइयो! मैं नेता नहीं हूँ, लेकिन गरीब हूँ। आप चाहे तो मुझ पर भरोसा कर सकते हैं।”<sup>4</sup> छोटा लड़का सभी लड़कों के लिए प्रेरणादायक बनकर

अपने लिए और समाज के लिए फिर से जुलूस करने की तैयारीयों कर रहा है। प्राध्यापकों में दो दल हो जाते हैं, कुछ लोग छात्रों का समर्थन देने की बात कर रहे हैं, दूसरे छात्रों की हरकतों के विरुद्ध हैं और पुलिस की मार को उचित ठहराते हैं। छात्रों की ऐसी हालत को राजनीति जितनी ज़िम्मेदार है उतना ही समाज भी। यह आंदोलन अकेले छात्रों का नहीं है बल्कि सब का है क्योंकि कानून की भाषा अंग्रेज़ी है, सरकारी भाषा अंग्रेज़ी है, हर दफ्तर में उस भाषा का बोलचाल है जिसे आम आदमी नहीं जानता है। उसके खिलाफ है यह आंदोलन। पूरी जनता यदि ऐसी बात समझकर साथ दिया होता तो गाँव-गाँव के बच्चे ऊँचे पद पर जाते। लेकिन हर कोई अपने स्वार्थ के लिए आंदोलन करते हैं। किसी का किसी से मेल नहीं है। किसी को किसी से हमदर्दी भी नहीं है, क्योंकि यहाँ सब को स्वयं स्वार्थ की अधिकता है। जो लड़के सब के लिए लड़ रहे हैं, उनका मानना यह है कि “क्या यह बारी-बारी से होनेवाले आंदोलन एक साथ नहीं हो सकते। एक ही साथ और एक ही बात के लिए।”<sup>5</sup>

सरकार ने छात्र-छात्राओं को बारह घंटों के भीतर छात्रावासों को खाली करने का आदेश दिया। नगर में जितने भी केंद्रिय दफ्तर हैं, सब पुलिस के कब्ज़े में हैं। कॉलेज भी पुलिस ने अपने कब्ज़े में कर दिया है। कुलपति से लेकर सभी अध्यापकों पर पुलिस की नज़र है और पुलिस सब की तरफ अपराधी की तरह व्यवहार करती है। डॉक्टर श्यामसुंदर दुबे ने लिखा है “अपना मोर्चा का अंतिम सिरा प्रोफेसर के आत्मसम्मान की चिन्दी-चिन्दी उड़ाता है, किंतु अपनी व्यंग्य शक्ति के आधार पर प्रोफेसर अपने उद्देश्य में सफल होता है। अंततोगत्वा अपने पक्ष को वह सफल बना लेता है। अपमान के धक्के उसे आत्मबल देते हैं। इसी आत्मबल के केंद्र पर जवान और प्रोफेसर एक हो जाते हैं। यहाँ से एक नए तरह का अपना मोर्चा खुलता है। सिद्धांत और व्यवहार का अंतर्द्वंद्व समाप्त होता है। लिखने की सकर्मता का नया प्रकाश कारे कागज़ पर फैलता है।”<sup>6</sup>

**निष्कर्ष :-**काशीनाथ सिंह ने 'अपना मोर्चा' उपन्यास में छात्र शक्ति को सही दिशा देने की कोशिश की है, साथ ही समय के अनुसार बदलती स्थितियों के अनुसार इस बात को देख रहे हैं कि युवाओं की सोच समाज के प्रति कैसी है? 'अपना मोर्चा' की संभावनाएँ जिस विलोम की ओर बढ़ रही है उस विलोम को काशीनाथ सिंह ने स्वयं अनुभव भी कर लिया है। यह अपने समय की यह एक ऐसी संजीदा कृति है जिसमें हिंदी कथा साहित्य के युगांतरकारी परिवर्तनों का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

### आधार ग्रंथ

अपना मोर्चा, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, वर्ष 1985

### संदर्भ:

1. अपना मोर्चा, काशीनाथ सिंह, पृ. सं 28, राजकमल प्रकाशन; 13 वाँ संस्करण (2017)
2. वही पृ. सं 29
3. वही पृ. सं 37
4. वही पृ. सं 88
5. वही पृ. सं 121
6. संस्कृति, समाज और संवेदना, डॉ. श्यामसुंदर दुबे पृ. सं 44; लोकभारती प्रकाशन, 2013

शोध छात्रा

यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम

9809850381

athiraarun111@gmail.com

### (पृ.सं.12 के आगे)

चिर युवा विस्तर पर कर चुके सहवास<sup>20</sup>

**निष्कर्ष :** भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद तथा नव उपनिवेशवादी संस्कृति के कारण आ रहे भयानक बदलावों के कारण सामाजिक वैषम्य एवं विकृतियाँ आ गयी हैं। मानवीय मूल्यों में पतन हुआ है। कलुषित एवं कुटिल हो रही राजनीति प्रभावी हो रही है। हताश और निराश व्यक्ति शोषण से पीड़ित है। प्रेम सम्बन्धों का अलग रूप हमारे सामने आ रहा है, विशेषतः स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का। आज व्यक्ति की स्थिति बाज़ारवाद के प्रभाव के कारण मार्केट में व्यक्ति मर्कट बन गया है। सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य बिखर रहे हैं। आज व्यक्ति तथा रिश्तों की स्थिति ए.टी.एम कार्ड की तरह हो गयी है। यदि पैसा है तो ए.टी.एम की कीमत है। यही स्थिति मनुष्य रिश्तों की हो चुकी है। यूज़ एण्ड थ्रो कल्चर में, उपभोक्ता संस्कृति में रिश्ते कोई अर्थ नहीं रखते। रिश्ते मात्र प्रयोजनमूलकता पर आधारित हो गये हैं।

### संदर्भ:

1. इबार रबी लोग बाग पृ. 11
2. चन्द्रकांत देवताले, भूखण्ड तप रहा है पृ. 48
3. कुमार अम्बुज किवाड़, एक आदमी जंगल में पृ. 101

4. चन्द्रकान्त देवताले, दीवारों पर खून से पृ. 45
5. बलदेव वंशी, उपनगर में वापसी पृ. 90
6. रघुवीर सहाय, लोग भूल जाते हैं, खुशी पृ. 98
7. लीलाधर जगूड़ी, अनुभव के आकाश में चाँद पृ. 23
8. नरेन्द्रमोहन, इस हादसे में पृ. 51
9. लीलाधर जगूड़ी अनुभव के आकाश में चाँद खबरें पृ. 23
10. लीलाधर जगूड़ी भिखारी पृ. 88
11. रघुवीर सहाय, इतिहास पृ. 51
12. मंगलेश डबराल पहाड़ पर लालटेन पृ. 60
13. मंगलेश डबराल पहाड़ पर लालटेन पृ. 60
14. उदय प्रकाश मेरी बारी 2
15. घूमिल संसद से सड़क तक पृ. 50
16. गगन गिल, एक दिन लड़की पृ. 25
17. जितेन्द्र श्रीवास्तव असुन्दर पृ. 29
18. सुनीता जैन रसोई की खिडकी में पृ. 23
19. जितेन्द्र श्री वास्तव, अमर उजाला काव्य डेस्क, वर्ष 2018
20. पवन करण स्त्री मेरे भीतर पृ. 47

◆ सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग  
हिन्दू कन्या महाविद्यालय, धारीवाल।



## चित्रामुद्गल और उनका कहानी संग्रह 'भूख'

◆ अभिषेक शर्मा, © अन्नू शर्मा

**सार** -चित्रा मुद्गल आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की जानी मानी, बहुचर्चित लेखिकाओं में से एक हैं। चित्रा मुद्गल सभी श्रमिक

वर्ग और महिलाओं के लिए प्रेरणा हैं क्योंकि उन्होंने उनके लिए एक नया रास्ता खोजा एवं उन सभी की समस्या को अपने साहित्य में स्थान दिया। चित्रा जी का साहित्य चुनौतियों से भरा है, लेकिन वह कभी उम्मीद नहीं खोती है। वे अपने पाठकों को हमेशा सर्वश्रेष्ठ देने की कोशिश करती हैं। चित्रा मुद्गल एक कुशल और बहुप्रतिभा संपन्न कथाकार हैं, और अगर हम उनके कहानी संग्रह 'भूख' की बात करें तो उसमें कुल दस कहानियाँ हैं, जिनमें माननीय समस्याएँ हैं, राजनीतिक परिस्थिति पर प्रहार भी।, चित्रा जी ने महिलाओं के चरित्र को इतना वास्तविक दिखाया है कि ऐसा लगता है कि यह कहानी न होकर किसी के घर का यथार्थ है। समाज की कड़वी सच्चाई की कहानी है 'भूख'।

**बीज शब्द** सर्वकालिक, बहुचर्चित, भूख, बहुप्रतिभा ।

10 दिसंबर 1944 को चेन्नई, तमिलनाडु में जन्मी चित्रा मुद्गल आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की एक जानी-मानी और बहुचर्चित लेखिका हैं। इनकी प्रारंभिक शिक्षा उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में स्थित निहाली खेड़ा (पैतृक गाँव) में हुई एवं उच्च शिक्षा मुंबई विश्वविद्यालय में हुई। उन्होंने श्रमिकों और महिलाओं की समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान दिया। चित्रा जी का साहित्य चुनौतियों से भरा है। वे कभी उम्मीद नहीं खोती हैं, वे अपने पाठकों को हमेशा सर्वश्रेष्ठ देने की कोशिश करती हैं।

'भूख' चित्रा जी की उन कहानियों में से एक है जो बहुत ही हृदयस्पर्शी है, जहाँ उन्होंने मुंबई की एक चाल में रहती गरीब माँ के बारे में बात की है। वे तीन बच्चों को पाल रही हैं, और रोज़ाना जीवित रहने का

प्रबंध करती हैं। इस कहानी में भूख को गरीब लोगों की समस्या के रूप में देखा जा सकता है, जो दिन-प्रतिदिन स्वयं एवं परिवार के लिए कुछ भोजन का प्रबंध करते हैं। अगर वे कुछ करने में सक्षम नहीं हैं तो वे बिना खाए ही सो जाते हैं। उनको आत्मग्लानि और पछतावा होता है, यह कहानी समाज की कोरी वास्तविकता और मानसिकता को दर्शाती है। इस कहानी में चित्राजी ने एक लाचार महिला को दिखाया है। कहानी ने पाठकों के लिए कई सवाल खड़े किए हैं- जैसे सरकार ने उनकी और उनके बच्चों जैसे और लोगों की देखभाल क्यों नहीं की या करने का कुछ प्रबंध क्यों नहीं किया? भरण-पोषण का प्रश्न? श्रमिकों के अधिकार?

भूख इस दुनिया की किसी भी चीज़ से बड़ी है जिसके चलते गरीब कुछ भी कर सकता है। 'भूख' कहानी में विधवा और एकल पत्नी लक्ष्मा प्रतिनिधित्व करती हैं उन सभी महिलाओं का, जो इस दुनिया में अकेली हैं, और लोग उनकी स्थिति का फायदा उठाने की कोशिश कर रहे हैं। सावित्री उन अच्छे चरित्रवाले लोगो का प्रतिनिधित्व करती हैं जो ज़रूरतमंदों की मदद करते हैं। लेकिन वे भी उन कुछ सीमाओं से आगे नहीं जा सकती हैं, उनकी भी सीमाएँ तय हैं। भिखारी महिला उन सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो केवल गरीब लोगों का फायदा उठाना जानते हैं और अपना काम निकालना जानते हैं।

'लेन' यह एक गरीब परिवार के दिल को छू लेनेवाली कहानी है जो आज भी प्रासंगिक है। यहाँ महिला एक ऐसी स्थिति में है जहाँ उसके सामने जीने के दो रास्ते देखे हैं-एक सत्य का पक्ष है जिसका अर्थ है समस्या और जीवन-यापन करने का प्रश्न। दूसरा है झूठ और खुशी से रहने का पक्ष। इस कहानी में ये दो प्रश्न न केवल मुख्य हैं, बल्कि कई प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, जैसे

महेंदरिया की सोच एवं विचार, जीवन-यापन के लिये काम,पति के प्रति प्रेम, गरीब खुद के दुख में भी आराम नहीं कर सकता, काम करेगा तो जिएगा वरना भूख से मृत्यु को प्राप्त होगा आदि। इस कहानी में आम आदमी की पुलिस के प्रति सोच एवं एक अलग तरह की पुलिस को भी देखा जाता है। आम आदमी पुलिस के नाम से डरता है। किन्तु वे आम लोगों के साथ बाहुत सहयोगी हैं और मदद के लिए हमेशा तत्पर हैं। इस संकलन की हर कहानी अलग नज़रिए की है, जहाँ घर पर आई समस्याओं से घर के बच्चे खुद की उम्र से बड़े और सयाने से हो गए हैं, खिलौने की जगह उनके हाथों में गृहस्थी का काम थमा दिया। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गरीब भोजन के लिए सब कुछ कर सकता है।

‘चेहरे’ कहानी में कहानीकार ने प्रशासन की घूसखोरी एवं लालच की पोल खोली है, जहाँ आम आदमी सरकार के इस पक्ष से अनजान है कि प्रशासन हमारे चारों ओर दोहरे चेहरे के साथ घूमता है। इस कहानी में लेखिका ने तीन अलग-अलग वर्ग को दिखाया है -एक मजदूर गरीब वर्ग दूसरा मध्यम वर्ग और तीसरा घूसखोर वर्ग। इस कहानी में भिखारी पैसे चुराकर अपना पेट पाल रहा है। इनकी स्थिति में सुधार के लिए लोगों ने कुछ भी नहीं किया। प्रशासन आम जनता का खून चूस रहा है, यही इस देश की विडम्बना है, क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो हमारे देश में कोई गरीब नहीं होता और हमारा देश या देशवासी सुख से रहते। इस कहानी का निष्कर्ष यही है कि शोषण के विरुद्ध आवाज़ वही उठाता है जो सच्चा है, वरना झूठे तो रेलवे स्टेशन की खिडकी की तरह हैं जो अपने हिसाब से खुलती या बंद होती है। भोलेभाले लोग संघर्ष कर रहे हैं कि प्रशासन की चालबाजी से कैसे निपटा जाए। और कुछ प्रश्न मुख्य स्तर से केंद्रित होते हैं, जैसे आलस और फ्री का खाना खाने की आदत कब और कैसे जाएगी?

‘फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती’ कहानी वैश्यावृत्ति पर लिखी गयी है। इस दुख भरी दुनिया में

सच्चाईयों के चेहरे खोजने की ललक के साथ-साथ इस कहानी में अस्मिता एवं सुरक्षा तथा एकता और समान व्यवहार का प्रश्न भी है। साथ ही साथ औरत गौरव और सम्मान की भी अधिकारी है। वैश्यावृत्ति के क्षेत्र में लोग महिलाओं को सम्मान से नहीं देखते हैं। महिलाओं के इस कीचड़ में आने का क्या कारण है, लोग इस बात पर ध्यान क्यों नहीं देते, बेहतर परिवेश के लिए कुछ क्यों नहीं कर रहे हैं?-इन महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान दिलाया गया है। मैं शैली में लिखी यह कहानी प्रतीकात्मक स्वरूप के साथ लिखी गई है, जैसे ‘अंधेरा’ प्रतीक है उन सभी लड़कियों का जो वैश्यावृत्ति करती हैं, उनकी जिंदगी उस कुए के समान प्रतीत होती है जिसमें सिर्फ अंधेरा है और चाहकर भी बाहर नहीं आ सकती।

यह कहानी समाज के उन सभी लोगों का प्रतीक है जो खुद के लाभ के लिए महिलाओं को बेचते और खरीदते हैं। ‘फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती’ शीर्षक हमें बताता है कि इस दुनिया में ऐसी बहुत सारी फातिमाबाई देखने को मिल जाएगी जो वैश्यावृत्ति जैसा काम करती हैं और कई लड़कियों को इस दलदल में डुबोती हैं, और एक बार वैश्यावृत्ति में फँसने के उपरांत औरतें/लड़कियाँ चाहते हुए भी इस दलदल से नहीं निकल पाती हैं। इस जगह पर वे लोग दोषी हैं जो ऐसी स्थिति बनाते हैं जिससे लड़कियों को वैश्यावृत्ति का रास्ता अपनाना पड़ता है। यहाँ पुलिसवाले भी इच्छा के अनुसार लोगों/लड़कियों से काम लेते हैं। हम लड़कियों के यहाँ होने का कारण देखते हैं तो इसके पीछे गरीबी, सौतेली माँ ऐसे अनेक कारण पायेंगे। सभी के चेहरे पर मुखौटे की एक ऐसी परत है कि अपना कौन और पराया कौन का भेद नहीं है।

‘इस हमाम में’ कहानी बहुत सरल है जिसमें चित्राजी ने विवाहित महिलाओं के अन्तर्द्वन्द्व को दिखाया है तथा शिक्षित और अशिक्षित लोगों की सोच एवं मानसिकता के ऊपर सवाल खड़े किये हैं, जहाँ लोग सोच रहे हैं कि महिलाएँ अपने वैवाहिक जीवन में खुश हैं क्योंकि उनके पास सभी सुविधाएँ हैं। इस कहानी में

सोमेश स्वढिवादी, अंधविश्वासी है और महिलाओं को नीचे खींचने की कोशिश करता है। महिलाओं के प्रति उसकी सोच घर के चार दिवारी के लिए ही होती है। घर से बाहर महिलाएँ केवल अपने पति के नाम के टैग से जानी जाती हैं। उनकी अपनी कोई पहचान एवं अस्तित्व नहीं हैं। इस कहानी में दो प्रकार की महिलाएँ हैं- एक शिक्षित समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं और दूसरी अशिक्षित समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन बात यह है कि पढ़ी-लिखी औरतें खुद फैसला नहीं लेतीं, वे अपने पति पर निर्भर रहती हैं (दिवा की तरह)। दूसरी ओर अशिक्षित अपना जीवन अपने निर्णय के साथ जीती है, वह वही करती है जो उसे पसंद है। इस कहानी में दो समुदाय हैं- एक अमीर और कुलीन, दूसरा गरीब और मज़दूर वर्ग। द्वितीय वर्ग में अधिक मानवीयता है क्योंकि वे आवश्यक चीज़ों को संग्रहित करने के लिए संघर्ष करते हैं, और अमीर लोग इसे प्राप्त करते हैं कुछ अनुचित मार्ग से। अंत में 'इस हमाम में' का मतलाब यही निकाला जा सकता है की इस दुनिया में कोई किसी को साँत्वना नहीं दे सकता, हमें अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी।

'फ्लेड' कहानी में मज़दूर की समस्या के साथ अमीर और गरीब की परिभाषा भी है, जहाँ गरीब रोज़गार के लिये अपना घर छोड़कर अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए शहर आता है, दूसरी ओर अमीर लोगों के पास हर एक चीज़ है। कुछ गरीब लोग अधिक वफादार और नैतिक मूल्यों के साथ जीते हैं। परंतु घर-परिवार की मुश्कलों के कारण वे कब अपने नैतिक आचरण और संस्कार को छोड़ आगे निकल जाते हैं उसका पता नहीं है। लेकिन यहाँ सवाल उठता है कि ऐसी सोच एवं परिस्थिति के लिए कौन ज़िम्मेदार है। अंत में देखा जाता है कि नैतिक मूल्य की लड़ाई हार जाती है। हारने का मुख्य कारण परिवार की सद्भावना है। एक अच्छा आदमी अपने परिवार को खुश करने के लिए सब कुछ करता है, कोई फर्क नहीं पड़ता चाहे वह कितनी भी कीमत चुकाए।

'ज़रिया' कहानी उन लोगों से संबंधित है जो स्वार्थी दुनिया में अपना मतलब ढूँढने के लिए किसी को भी ज़रिया बनाकर उससे अपना फायदा उठाना जानते हैं। घर के काम के साथ एक महिला को पति के नाम के साथ-साथ अपना नाम भी चाहिए। कहानी में एक ओर गृहिणी अपनी पहचान को तलाश रही है, तो दूसरी तरफ हिंदी भाषा में अभिव्यक्ति के लिए ललक भी रही है। इस कहानी में अपनी भाषा के प्रति लगाव के साथ-साथ लालच तथा स्वार्थ भी हैं। एक गृहिणी का मासूम स्वभाव है कि वह आत्मनिर्भर बनने के चक्कर में ज़रिया बनकर रह जाती है। यदि एक व्यक्ति किसी चीज़ की अपेक्षा या सपना बुनता है और उसका परिणाम उसकी आशा के अनुसार नहीं निकलता है तो उस सपने के टूटने पर जो दर्द होता है, उस दर्द की अभिव्यक्ति है यह कहानी।

'वाइफ स्वैपी' आधुनिक लोगों के एक कटु सत्य की कहानी है। इस कहानी में चित्रा जी ने दिखाया है कि भारतीय संस्कृति कैसे नीचे गिरती जा रही है और आधुनिक / पाश्चात्य संस्कृति के कारण भारतीय संस्कृति के मूल्य का पतन किस प्रकार होता जा रहा है। यह कहानी फ्लैशबैक से शुरू होती है जहाँ मेजर आलुवालिया ने अतीत को याद करते हुए हिमानी को अपनी एक कहानी सुनाई। इस कहानी में पति-पत्नी के बीच का रिश्ता है, जहाँ एक महिला अपने पति और परिवार के लिए प्रतिबद्ध होती है, लेकिन पति जैसा चाहता है वैसा ही करता है, वह बिना पछतावे के हर काम करता है। आधुनिक संस्कृति पर भी कई प्रश्न उठाये गये हैं। हमारी भारतीय मानसिकता का दोष हो सकता है कि घर के बाहर कार्य करने की अनुमति तो देता है, पर उस घुटन भरी ज़िदगी से आज्ञादी नहीं देता है। बाहर की आज्ञादी सिर्फ पुरुषों को है, महिलाओं को बोलने का अधिकार नहीं है, उसे केवल अपने पति को सुनने का अधिकार है कि वह जो कहता है वह सही है। लेकिन इस कहानी में महिलाएँ भी पुरुष की तरह स्थिति का आनंद लेती हैं।



‘होना संपादक की पत्नी एक’ कहानी में उन महिलाओं की आवाज़ है जो स्वतंत्र काम करती हैं एवं जहाँ उनके पति उच्च पद पर हैं। हम सोचते हैं कि पति और पत्नी एक ही हैं। इस कहानी का नैतिक मूल्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है, तथा हमें व्यक्तिगत कार्यों का मूल्यांकन और आकलन परिवार के सदस्यों के रूप में नहीं करना चाहिए, अपने व्यक्तिगत कार्यों से न्याय करना चाहिए। इसके अलावा हमें ऐसी महिला की स्थिति को भी समझने की ज़रूरत है जो अपने काम में सच्ची है लेकिन हम उसके काम की सराहना न कर उसकी आत्मनिर्भरता, उसके विस्वास को चोट पहुँचाते हैं।

‘बंद’ कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक अर्थ का है। जहाँ ‘बंद’ प्रतीक है उन सभी लोगों का जिन्होंने अपना दिमाग/ सोच समझने की शक्ति बंद कर दी है एवं गरीबों का शोषण कर उनकी मज़बूरी का फ़ायदा उठाते हैं। यह बंद प्रतीक है उन सभी अवसरों का, जो पीछे छूट कर रह जाता है अमीरों के लालच से। इस कहानी में दुख इस बात का है कि बंद होने का असर किस पर पड़ेगा, सुविधाओं से पूर्ण अमीर व्यक्ति पर या बिना सुविधाओं के रहे गरीब लोगों पर। बंद वास्तव में उन लोगों के लिए है, जो जीविका, रोज़गार के लिए दिन प्रतिदिन मज़दूरी कर अपना पेट पालता है। चित्रा जी ने कुछ सवाल उठाए हैं-जैसे, यहाँ बाहरवाले कौन हैं? किसके लिए यह बंद है? सरकार की नीति पर सवाल के साथ-साथ उन हिंदूवादियों से भी सवाल किया है कि जहाँ हिंदू-मुस्लिम लड़ाई में हिंदू भाई-भाई हैं, तो हिंदू-हिंदू आपस में क्यों लड़ते हैं? इस कहानी में यह कहावत बिलकुल सही बैठती है कि एक बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, जैसे बॉस कर्मचारियों का उपयोग करेगा, कर्मचारी निचले स्तर के व्यक्ति का उपयोग करेंगे और इसी तरह यह चक्र दोहराया जाएगा और निरंतर यह चक्र ऐसा ही चलता रहेगा। यहाँ हमने लोगों की भूख देखी, और यह भूख सब से परे है, और

बाकी सब कुछ गौण हैं। यह कहानी अमीर और गरीब लोगों, श्रमिकों और मालिक की कहानी के पीछे की कहानी बताती है, जहाँ इस कहानी के शीर्षक बंद का वास्तविक अर्थ यह है कि यह बंद सभी राज्य, जाति, धर्म के लिए नहीं है, यह उन सभी लोगों के लिए है जो धर्म के नाम पर लोगों का शोषण करते हैं और गरीब लोगों से लाभ एवं खुद का फ़ायदा उठाते हैं।

### निष्कर्ष

चित्रा मुद्गल एक कुशल और बहुप्रतिभा संपन्न कथाकार हैं, और अगर हम उनके कहानी संग्रह ‘भूख’ की बात करें तो उसमें कुल दस कहानियाँ हैं। सभी कहानियों में मानवीय गहराइयों एवं राजनीतिक परिस्थिति पर प्रहार किया गया है। चित्रा जी ने सभी महिलाओं के चरित्र को इतना वास्तविक दिखाया है कि ऐसा लगता है कि यह कोरी कहानी न होकर किसी के घर की असली वास्तविक कहानी है। भावुकता के साथ-साथ समाज की कड़वी सच्चाइयाँ इन कहानियों में परिलक्षित होती हैं।

### संदर्भ सूची

भूख, चित्रा मुद्गल प्रकाशक-ज्ञान गंगा, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली।

हिंदी समय, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का अभिक्रम, आई एस एस एन संख्या 23946687।

◆ जूनियर प्रोजेक्ट कन्सलटेंट,  
नाशनल इंस्टिट्यूट ऑफ एड्यूकेशन एण्ड प्लानिंग  
एन सी ई आर टी कैंपस  
नई दिल्ली-110016।  
मो. न. 9953883142,

ईमेल -asharma19may@gmail.com

Ⓒ शोधार्थी (सामाजिक और सामुदायिक चिकित्सा)  
संतोष डीम्ड यूनिवर्सिटी  
मो. न. 8860697891,

ई मेल - aaniyasharma2354@gmail.com



## भूमंडलीकरण तथा विश्व व्यवस्था में आदिवासी समाज के शोषण का स्वरूप

♦ वेद प्रकाश सिंह

भूमंडलीकरण की अनवरत ज़ारी प्रक्रिया ने लगातार आदिवासी समाज का शोषण किया है। यह प्रक्रिया आज भी उसी रफ़्तार से आगे बढ़ती जा रही है। इसे वैश्वीकरण की भी संज्ञा प्रदान की गई है। आदिवासी समाज पर बढ़ते भूमंडलीकरण के प्रभाव पर बात करने से पूर्व भूमंडलीकरण पर विचार करना अति आवश्यक है। 'भूमंडलीकरण' शब्द हिंदी में अंग्रेजी शब्द 'ग्लोबलाइजेशन' से आया है। भूमंडलीकरण का शाब्दिक अर्थ है पूरे विश्व का एक सूत्र से जुड़ना। परंतु इसका एक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य है। बीसवीं सदी के सत्तर एवं अस्सी के दशक के आते-आते भूमंडलीकरण शब्द का प्रचलन शुरू हो गया था। नब्बे के दशक में एक वैश्विक मुक्त अर्थव्यवस्था के रूप में भूमंडलीकरण का गहरा संबंध है। सन् 1991 में सोवियत संघ के पतन और चीन द्वारा उदारिकरण की नीतियों को अपनाने के पश्चात भूमंडलीकरण के सामने तमाम चुनौतियाँ आने से बच गईं। विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं ने दुनिया भर के देशों के लिए द्वार खोलने से संबंधित तरह-तरह के करार किए।

भूमंडलीकरण ने ऐसी व्यवस्था स्थापित कर दी है कि आदिवासी लगातार उसमें फँसता जा रहा है। यहाँ पर यह सवाल उठता है कि क्यों वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासियों को सरकारें लगातार खारिज कर रही हैं। उनकी सभ्यता और संस्कृति को उनकी सामाजिक संरचना से काटकर सुरक्षित रखने की बातें की जाती हैं, जैसे वे जीवित नहीं जीवांश हैं, जबकि दो दशकों से नहीं, सदियों से लड़ते रहे हैं और आज भी लगातार अपने अस्तित्व और अपने होने की लड़ाई लड़ रहे हैं, इसके

बाद भी समाज से उन्हें खारिज करने का चलन अनवरत आज भी चल रहा है, और यह चलन लगभग उतना ही पुराना है, जितना वर्णगत समाज व्यवस्था की अवधारणा। इस समाज व्यवस्था में आदिवासियों के लिए कोई जगह नहीं है और यदि है तो कहीं वह वानर है, तो कहीं उनको एकलव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है, कहीं शबरी, तो कहीं निषादराज के रूप में, जिनके हिस्से अपनी तमाम एकजुट क्षमता के बाद भी राजसत्तावादी वर्ग और उच्च वर्ग के प्रति समर्पण सहित भक्ति ही है। वर्णगत समाज व्यवस्था में आदिवासियों के लिए जगह न होना अच्छी बात है। इस समझ के लिए अच्छी बात है कि वह वर्णवादी समाज व्यवस्था से भिन्न समाज व्यवस्था में जीता रहा है। हालाँकि उनके हिस्से राजसत्ता का खिताब भी रहे हैं। आदिवासियों की अपनी सल्तनत रही है। वे सिर्फ उपेक्षित और वंचित होने के सदस्य नहीं। आदिवासी समाज ने सत्तारूढ़ वर्ग के प्रति जब भी लड़ाइयाँ लड़ीं, उसे सम्मान और गौरव मिला, लेकिन उसकी अपनी लड़ाइयों के प्रति सामंती परिदृश्य में भी गहरी उपेक्षा है। उन्हें गणों और कबीलों का आदिम बाशिंदा माना गया। यह मान लिया गया कि आदिवासियों को जल, जंगल तथा ज़मीन व पहाड़ और अपनी बस्तियों में रहने की ऐसी आदत है, जिसे वे छोड़ नहीं सकते। छोड़ना नहीं चाहते। इस बात को समझना ही गैर ज़रूरी मान लिया गया, वह ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए किया गया कि सरकारें आदिवासियों के लिए अपने हित में लापरवाह रही हैं। उनकी उदासीनता, उनकी असहमति और उनकी नाराज़गी को जानने और समझने की ज़हमत नहीं उठायी गयी। सत्तारूढ़ वर्ग का आदिवासी समाज से वास्ता ज़मीन की दावेदारी को लेकर ही पड़ा, जहाँ जल भी है, जंगल भी है और अकूत मात्रा में

कोयला तथा विभिन्न प्रकार के खनिजों के भंडार विद्यमान हैं, जिसका आर्थिक स्तर पर विशेष महत्व है, जिससे सरकारें संचालित होती हैं। वर्चस्व, पूंजीवाद व भूमंडलीकरण की नींव मज़बूत होती है जिसका आदिवासी लोग सदैव विरोध करते हैं। अपने में मग्न रहनेवाला, अपनी सभ्यता, संस्कृति और परंपरा को सदैव लेकर आगे बढ़नेवाला लगातार उपेक्षित है। आदिवासियों के संघर्ष को विद्रोह कहना आसान है। उससे भी ज़्यादा आसान है, विद्रोह के कारणों को आदिवासी समुदाय के दायरे में समेट देना। उनके सदियों के संघर्ष को इतिहास के चर्चित पन्नों से बाहर रखना और कुछ इस तरह से उनका उल्लेख करना, जैसे यह सब समय-समय पर हुए चंद्र सिरफिरो का काम था, जिन्होंने प्रकृति के सान्निध्य में रहनेवाले, समाज से कटे लोगों के हाथों में हथियार थमा दिया। सच इसके बिल्कुल विपरीत है। सिरफिरे पहले पैदा हुए होते हैं, परिस्थितियाँ जिन्हें अपनों की फिरक करना सिखाती हैं। भगवान उन्हें बाद में बना दिया जाता है। आदिवासियों के हथियार और औजार के बीच की दूरियाँ निर्माण और विध्वंस की बची दूरियाँ नहीं हैं। वे हथियारों और औजारों के साथ ही जीते हैं। खेती किसानी करते हैं, पशुओं को पालते हैं और जंगली जानवरों का शिकार करते हैं। कमरतोड़ मेहनत करते हैं और जंगलों में, गाँवों में और अपनी बस्तियों में जीने के लिए लड़ाई लड़ते हैं। सिर्फ तीर-धनुष की पहचान नहीं, मंदिर व नाच के मुखौटों में भी उनकी पहचान छिपी होती है। वे समूह में रहते, गाते और नाचते हैं। इसलिए सोचना कि वे सिरफिरे नायकों के पीछे चलते हैं।

वैश्विक स्तर पर तमाम देशों, यहाँ तक कि भारत की अर्थव्यवस्था को भी विश्व आर्थिक मंच संचालित कर रहा है। वित्तीय पूँजी ने दुनिया के ज़्यादातर देशों की सरकारों को अपने कब्जे में कर रखा है, जिसके सामने अपने विकास की चरम व्यवस्था पर पहुँचकर वहाँ से गिरने का संकट लगातार बरकरार है। ऑक्सफैम 2015 की प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि “वैश्विक अर्थव्यवस्था के उस दौर को, यदि रोका

या बदला नहीं गया, तो दो सालों से भी कम समय में दुनिया के सबसे धनवान लोगों के पास दुनिया की आधी संपत्ति होगी।”<sup>1</sup>

यह चौंकानेवाला तथ्य तथा सत्य उन सबके समक्ष है, जिनकी दौलत की भूख अभी समाप्त नहीं हुई है। इसका मतलब है, विसंगतियों की ओर बढ़ना। यह भी सत्य है कि आदिवासी समाज सिर्फ भारत में नहीं बल्कि पूरे विश्व में समाज के सबसे निचले पायदान पर है। चाहे वह कांगो हो, नाइजीरिया हो, भूटान हो या नेपाल हो इत्यादि, समाज के बहुसंख्यक वर्ग के सबसे निचले दर्जे का निवासी है। उसके समक्ष कुपोषण तथा भुखमरी की कभी न सुलझनेवाली उलझनें हैं। इससे तय है कि उसकी उलझनें और बढ़ेंगी और उसके पांव के नीचे से उसकी ज़मीन भी धीरे से खिसक जाएगी, क्योंकि वैश्वीकरण और सरकारों की मिलीभगत ने रेड कारपेट बिछाकर लगातार प्राकृतिक संसाधनों यथा कोयला, मैंगनीज, भूसंपदा एवं श्रम स्रोतों की नीलामी शुरू कर दी है। जनसमस्याओं की तरह आदिवासियों की समस्याओं का भी वैश्वीकरण हो गया है। मौजूदा वैश्वीकरण प्राकृतिक संसाधनों-जल, जंगल और ज़मीन -के निजीकरण की दावेदारी करता है। इससे आदिवासी समाज लगातार अपनी अस्मिता और अस्तित्व खोता जा रहा है।

सदियों से चले आ रहे भूमंडलीकरण के विरोध में आदिवासी समाज लगातार संघर्षरत है परंतु उसे आज भी अपनी पहचान और जल, जंगल व जमीन नहीं मिल पा रही है।

इक्कीसवीं सदी के इस पूंजीवादी समाज में अब आदिवासी समुदाय पर बड़ी-बड़ी कंपनियों तथा बड़े-बड़े उद्योगपतियों का अधिकार हो गया है और इससे लगातार उनका विस्थापन और शोषण हो रहे हैं। बड़ी-बड़ी कंपनियाँ आदिवासी इलाकों में जाकर वहाँ पर कोयला, माइका, हीरा और मैंगनीज इत्यादि की प्राप्ति के लिए खुदाई करवाती हैं और इसके फलस्वरूप आदिवासी समाज लगातार गहरी अंधेरी खाइयों में ढकेल दिया गया

है। इस शोषण के खिलाफ वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रहा है। आज जब आदिवासी समाज इन सब अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाता है तो उसे माओवादी, नक्सलवादी इत्यादि करार करके सरकारें उनका खतम करा देती हैं। वर्तमान समय में आदिवासी शोषण तथा उनकी पहचान को पूरी तरह नष्ट करने में भूमंडलीकरण एवं बड़ी-बड़ी कंपनियों ने बखूबी काम किया है। आज उन्हें अलग-अलग मुद्दों में बाँटकर सरकारें अपना चुनावी एजेंडा साधती हैं और वैश्वीकरण की परिस्थितियों ने आदिवासियों को राष्ट्र-राज्य से अलग बाँटकर उनका अस्तित्व ही समाप्त करने को निकला है। इसके विषय में अनुज लुगुन अपनी कविता 'सुगना मुंडा' में लिखते हैं- "उसने यह भी नहीं जाना कि/ उसके साथी/उसके सहजीवी/उसकी जमीन/उसके जंगल/उसकी नदियाँ/ उसकी आज़ादी/उसका सम्मान/सब खतरे में है/ उसे सूअरों ने/शब्दों के जंगल में इतना छकाया/कि वह छापामार बन गया।"<sup>2</sup>

भूमंडलीकरण का दुष्प्रभाव आदिवासी समाज पर इतना पड़ा कि आज भी इस समाज पर उसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। लगातार आदिवासियों के साथ उनकी अस्मिता और सहजीविता को यह पूँजीवाद खिलवाड़ करता रहा है। इस अन्याय के कारण ही आज भारत के छः सौ निन्यानबे आदिवासी समुदाय में से केवल छः सौ सैंतालीस बचे हैं, बाकी बावन पूरी तरह से समाप्त हो चुके हैं। यही नहीं, आज भी वे भारतीय राजसत्ता तथा कॉरपोरेट घरानों के शीर्ष हिटलिस्ट में सबसे पहले नंबर पर काबिज हैं। वे आधुनिक समय की शुरुआत से ही विकास का सबसे पसंदीदा शिकार रहे हैं। उन्होंने राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में सबसे ज़्यादा कीमत चुकायी है और देश के किसी भी नागरिक समुदाय की तुलना में सबसे कम प्राप्त किया है। जहाँ तक भारत के आम गरीब, वंचित जनता की बात है तो तथ्य यह है कि सत्ता हस्तांतरण के इतने सालों बाद भी जनता का अस्सी प्रतिशत हिस्सा बीस रुपए या उससे भी कम में गुज़र-बसर कर रहा है। वही सबसे धनी सौ परिवारों की कुल

आय देश की जीडीपी का पच्चीस प्रतिशत है। ये तथ्य हमें भारतीय शासक वर्ग की जनता के जीवन और स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता के बारे में संदेह करने के लिए बाध्य करते हैं। सत्ता हस्तांतरण के समय अर्थात् 19 दिसंबर 1946 को संविधान सभा में आदिवासी नेता रामदयाल मुंडा ने ऑब्जेक्टिक्स रिज़ाल्यूशन पर बोलते हुए कहा था "मैं भी सिंधु घाटी की सभ्यता की ही एक संतान हूँ और उसका इतिहास बताता है कि आप में से अधिकांश बाहर से आए हुए घुसपैठिए हैं। जहाँ तक हमारी बात है बाहर से आए हुए लोगों ने हमारे लोगों को सिंधु घाटी से जंगल की ओर खदेड़ा। हम लोगों का समूचा इतिहास बाहर से यहाँ आए लोगों के हाथों निरंतर शोषण और बेदखल किए जाने का इतिहास है। इसके बावजूद मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू की बात पर यकीन करता हूँ, मैं आप सबकी इस बात पर यकीन करता हूँ, कि हम एक नए अध्याय की शुरुआत करने जा रहे हैं। स्वतंत्र भारत का एक नया इतिहास जहाँ अवसरों की समानता होगी, जहाँ किसी की उपेक्षा नहीं की जाएगी।"<sup>3</sup>

भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी शोषण के स्वरूप पर भी बात करनी चाहिए, खासकर आदिवासी स्त्रियों के शोषण के बारे में। आदिवासी हिंदी कविताओं में जिन महिलाओं का चित्रण किया जाता है वे या तो बहुत गरीब होती हैं या बहुत रोमांटिक युवती जिसके साथ प्रेम किया जा सके, जो गाना गाती हैं, पहाड़ों पर कूदती-फांदती और नाचती हैं। बहुत सी आदिवासी महिलाएँ किसी के घर में दाई का काम करती हैं। आदिवासी हिंदी कविताओं में इन महिलाओं की परिस्थितियाँ, इन महिलाओं की मानसिकता, उनका शोषण ये सारी बातें कहीं पर भी खुलकर सामने नहीं आ पाती हैं। अपनी कविताओं में निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री की अस्मिता को व्यापक स्तर पर उठाती हैं। अपनी कविता 'पहाड़ी स्त्री' में आदिवासी स्त्रियों के सशक्त रूप को निर्मला जी कुछ इस प्रकार व्यक्त करती हैं- "वह जो सर पर सूखी लकड़ियों का गड्ढर लादे/पहाड़ से उतर रही है/पहाड़ी

स्त्री/अभीअभी जाएगी बाजार/और बेचकर सारी लकड़ियाँ/बुझाएगी घरभर के पेट की आग।”<sup>4</sup>

आज भी आदिवासी स्त्रियों की दशा में कुछ खास सुधार नहीं हो पाया है। वर्तमान में भी औद्योगिकरण व भूमंडलीकरण के चलते तमाम गाँव उजड़कर शहर में तब्दील हो गए हैं। इन इलाकों में दलित महिलाएँ भी रहती हैं। उनकी स्थिति बेहद ही दयनीय होती जा रही है। पूँजीवादी, उपभोक्तावादी एवं बाज़ारवादी संस्कृति इनको उजाड़ने में पुरज़ोर तरीके से लगी हुई है। जल, जंगल और जमीन को इनसे छीनकर वहाँ पर कोबाल्ट, कोयला एवं बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ स्थापित की जा रही हैं। आदिवासियों की आय के स्रोत जंगल लगातार घटते जा रहे हैं जिससे उनकी अपनी और अपने परिवार की आजीविका चलाने में समस्याएँ पैदा हो रही हैं। रात के समय उनका दैहिक शोषण बहुत विकराल रूप धारण करता जा रहा है। जो महिलाएँ इसके विरुद्ध संघर्ष करती हैं उनका न तो इतिहास में, न ही साहित्य में जिक्र होता है। हम उनके रोमांटिक रूप को साहित्य में स्थान देते हैं, लेकिन उनके संघर्षों को नहीं। औद्योगिकरण और भूमंडलीकरण के कारण इन इलाकों में महिलाएँ मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक दबाव में आकर कई तरह की कठिनाइयों का सामना कर रही हैं और इन सबका नतीजा यह हो रहा है कि अधिकाधिक महिलाएँ मानसिक रोगों से ग्रसित होती जा रही हैं। आदिवासी समाज को परिवर्तित करने में जो सोच काम कर रही है वह किसी भी दशा में आदिवासी स्त्रियों की दशा में सुधार के लिए तर्कसंगत नहीं है। आदिवासी साहित्य के माध्यम से ही हम उन लोगों को अधिक से अधिक शिक्षित कर, इस दिशा में आकर्षित कर सकते हैं कि महिलाओं की स्वतंत्रता और पुरुषों की स्वतंत्रता में कोई अंतर नहीं होता। हम अपने समाज को सुधारें, ताकि वे महिलाओं का सम्मान करना सीखें। उनके अधिकारों की रक्षा कर सकें और जहाँ भी उनके अधिकार छीने गए हैं, उन्हें वापस दिलाने की भरपूर कोशिश करें।

आदिवासी स्त्रियाँ, मुख्यधारा के समाज की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र और निडर होती हैं। वे रातों में अकेले जंगलों में जाकर औषधियाँ और महुआ बीनकर लाती हैं। इस समाज में शादियों की तमाम प्रथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें आदिवासी स्त्रियों को अपनी पसंद का विवाह करने की छूट है, जो मुख्यधारा के समाज की स्त्रियों के लिए अभी भी बहुत हद तक दूर की कौड़ी है। मगर आज मुख्य धारा का समाज बहुत हद तक आदिवासियों के शोषण का भी ज़िम्मेदार है, जबकि आदिवासी समाज में कभी भी बलात्कार जैसी घिनौनी हरकतें नहीं होती हैं। भूमंडलीकरण के कारण आदिवासियों का खूब शोषण किया जा रहा है। विकास के बाद लगातार उनका विनाश किया जा रहा है। आदिवासी दूसरे के विकास के लिए हो रहे अपने विनाश का प्रतिरोध करते हैं। आज़ाद भारत में आदिवासियों के सबसे ज़्यादा आंदोलन या तो अपनी राजनीतिक स्वायत्तता और अलगाव के लिए हुए या विस्थापन के खिलाफ। सरकार ने आदिवासियों के इन विरोधों के प्रति दो तरह की नीतियाँ अपनायीं जो एक साथ लागू होती हैं। पहली, आदिवासियों के विरोध आंदोलन का दमन करके उनको समाप्त करने की नीति और दूसरी, उनके नेतृत्व को खरीदकर, दलाल बनाकर, भ्रष्ट करके, शोषण करने की नीति। सरकारें लगातार आदिवासी समाज को विभिन्न प्रलोभन देकर उनका शोषण करती हैं और इसके विषय में सच तो यह है कि भारत के आदिवासी समुदाय एक विशेष समाज के रूप में प्रगति करने के बजाय अपने जल, जंगल, ज़मीन और पहचान खोकर बड़े ही बेतरतीब और अराजक ढंग से हिंदू समाज की नीतियों में और पूँजीवादी व्यवस्था में असंगति क्षेत्रों के सर्वहारा वर्ग में बदलते जा रहे हैं। उनके बीच उभरे छोटे से शिक्षित नौकरीपेशा वर्ग का बड़ा हिस्सा बाहरी लोगों के प्रभाव में घिरकर, सिर झुकाए उनके पीछे-पीछे चल रहा है, जबकि एक छोटा सा हिस्सा अपनी संस्कृति, भाषा और समाज की रक्षा को होनेवाले संघर्षों से जुड़ा है। राज्य सरकारों और केंद्र सरकारों की नीतियों और

आर्थिक कार्यक्रमों के नतीजे आदिवासी संस्कृति और समाज के लिए घातक साबित हुए हैं। आदिवासियों के प्रति शासन की बेरुखी इस हद तक है कि आज झारखंड ही नहीं बल्कि बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, नागालैंड और केरल इत्यादि जगहों पर उनकी संख्या घटकर नाममात्र की रह गयी है। आज़ादी के पश्चात आदिवासियों की जनसंख्या में वृद्धि का अनुपात बाकी भारत की जनसंख्या-वृद्धि के अनुपात में बहुत कम रहा है। बड़ी आदिवासी जातियों का अस्तित्व भले ही शारीरिक रूप से खत्म नहीं हो रहा है, लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से तो खत्म हो ही रहा है। अगर वियतनाम, बंगलादेश या बोस्निया में हज़ारों-लाखों मनुष्यों का संहार मानवता के विरुद्ध एक अपराध था, तो मनुष्यों के कुछ समुदायों को कहीं उनके शारीरिक अस्तित्व को और कहीं उनकी अलग भाषा, संस्कृति और पहचान को धीरे-धीरे नष्ट कर देनेवाली नीतियों को चलाते रहना, क्या यह भी मानवता के विरुद्ध नहीं है?

इक्कीसवीं सदी आदिवासियों से संबंधित है और यह समूचे संसार में आदिवासी लोगों के महान आंदोलनों का साक्षी बन चुकी है। वे धरा के आदिमपुत्र हैं और पूरी पृथ्वी वस्तुतः उन्हीं से संबंधित है। संस्कृति और सभ्यता भी उन्हीं से प्रारंभ हुई। पहली आदिवासी कविता, कहानी और चित्रकला आदि उन्हीं के द्वारा शुरू हुई। वे ही प्रथम किसान, प्रथम निर्माता, प्रथम ब्रह्मांड विज्ञानी थे। मानव जाति का इतिहास तथाकथित सभ्यताओं द्वारा आदिवासियों के क्रमिक विस्थापन और विनाश का इतिहास है, जिनकी सभ्यता, शोषण और हिंसा से उत्पन्न हुई थी। आज जबकि यह सभ्यता, भूमंडलीकरण, सांप्रदायिक और जातीय हिंसा पारिस्थितिकी विनाश और युद्ध के माध्यम से मानव जाति को आत्मघात की कगार पर ले गई है, तब पहले से ज़्यादा ज़रूरी है कि हम आदिवासियों के सामूहिक मूल्यों एवं प्रकृति के साथ उसके बंधुत्व से कुछ सीख प्राप्त करें। आदिवासी कविता इन मूल्यों की मूर्त रूप है और

विस्थापन, अपमान तथा शोषण के शिकार आदिवासियों की चिंता और वेदना को बखूबी प्रकट करती है। हमारे आदिवासी भाई-बहन तेज़ी से अपने जंगल, भूमि और जलस्रोतों को खोते जा रहे हैं। जंगल काटे जा रहे हैं, नदियाँ सूख रही हैं और विकास के नाम पर आदिवासी समूहों को उनकी ही ज़मीन से काटा जा रहा है। उन्हें न तो अपनी संस्कृति के विकास की इज़ाज़त है, न ही मुख्यधारा की संस्कृति में भागीदारी की। मुख्यधारा का समाज आज भी उन्हें असभ्य तथा अशिक्षित कहता है जबकि हकीकत है कि वे हमसे कहीं ज़्यादा सभ्य और शिक्षित हैं।

महान आदिवासी समुदाय ने ब्रिटिश राज्य और सामंत वर्ग ज़मींदारों के खिलाफ लड़ाई लड़ी और बिरसा मुंडा, तांतिया भील, खाज्या नाइक जैसे महान नायक पैदा किए। आज वह समाज भूमंडलीकरण तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण लगातार दमित एवं शोषित है। नवीन मुख्यधारा के समाज के प्रति अपना रोष प्रकट करता है। लगातार विस्थापन की मार झेलता यह समाज आज भी हमेशा अपनी सभ्यता और संस्कृति को बचाने के लिए प्रयासरत है। महादेव टोप्पो इस बात को प्रमुखता से अपनी कविता 'जंगल का कवि' में उठाते हैं "पहाड़ों पर/घाटियों में/उगने लहराने की उनकी आकांक्षा को/महुए की बोतल में/डुबोने की हो साजिश/जंगल का कवि/रहेगा भला कैसे चुप/वह धनुष उठाएगा/प्रत्यंचा पर कलम चढ़ाएगा/साथ में बांसुरी और मांदर/भी ज़रूर बजाएगा।"<sup>5</sup>

आदिवासी समाज के शोषण की बात कोई नई बात नहीं है। उनके साथ यह अन्याय और अत्याचार विगत कई युगों से होता चला आ रहा है। आज़ादी से पूर्व अंग्रेज़ी सत्ता के साथ लड़ता रहा आदिवासी समाज देश के आज़ाद हो जाने के बाद भी लगातार लड़ रहा है। आज़ादी के बाद भी आदिवासियों की रक्षा करने के बजाय सरकारों ने अंग्रेज़ों द्वारा बनाए गए नियमों और कानूनों को और सज़्ती के साथ लागू करना शुरू कर दिया। सरकार के इस कानून के कारण सिंहभूम में

1978 में जंगल आंदोलन छिड़ गया। 1978 और 1985 के बीच बिहार में अठारह पुलिस गोलीकांड हुए तथा चार सौ पचास आदिवासियों के घर उजाड़ दिए गए। हज़ारों आदिवासियों को झूठे मुकदमों में फँसाया गया। 14 अप्रैल 1984 को उच्चतम न्यायालय के चीफ ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट, सिंहभूम द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के अनुसार चौदह हज़ार आदिवासियों पर पाँच हज़ार एक सौ साठ मुकदमे, सिंहभूम जिले की अदालत में लंबित थे, जिनमें से कुछ 1960 से ही लंबित थे। दरअसल आदिवासियों की त्रासदी का मुख्य कारण है उनका पूर्वजों के गाँव से विस्थापन और ज़मीन तथा जंगलों के परंपरागत स्वामित्व से वंचित किया जाना। आदिवासी और जल, जंगल तथा जमीन के अटूट संबंध के बारे में तथा जनजातियों के सामाजिक संगठनों एवं जंगलों के अटूट रिश्ते के बारे में डॉ. राय बर्मन लिखते हैं “साम्राज्यवादी शासन काल में इस प्रतीकात्मक संबंधों को तब गहरा धक्का लगा जब जंगल को अधिकृत मुनाफे का स्रोत मात्र समझा जाने लगा और मानव निवास तथा विस्तृत जीवन परिसर के बीच की जीवंत कड़ी के रूप में इसे अनदेखा कर दिया गया।”<sup>6</sup>

आज़ादी के बाद जंगल को एक मुनाफे की वस्तु बना दी गयी और बर्बरतापूर्वक उसे बर्बाद किया गया। ठेकेदारों द्वारा जंगलों की निर्मम कटाई के प्रतिक्रिया-स्वरूप स्वयं ही उत्तराखंड में ‘चिपको आंदोलन’ चला था। बिहार, झारखंड में सखुआ के जंगल काटकर सागौन और सफेदे के जंगल लगाने का ज़बरदस्त विरोध हुआ, क्योंकि जंगल आदिवासियों को रोज़गार, पानी तथा वर्षा देता है। वह कटाव का संरक्षण तथा पानी के स्रोतों की रक्षा भी करता है। सफ़ेदे का जंगल पानी के स्रोत को सुखा देती है। सखुआ का पेड़ अकाल में भी उनके जीवन की रक्षा करता है, उसके बीजों से पेट भरकर आदिवासी जिंदा रहते हैं तो बीड़ी पत्ते उसे रोज़गार देते हैं। कुसुम के बीज तेल देते हैं, तो महुआ के फल तथा फूल भोजन और पेय पदार्थ। उसकी गुली तेल मुहैया कराती है। पलाश के पेड़ लाख देते हैं। इसके

विपरीत सागौन का पेड़ बड़ी-बड़ी टालों की तिजोरियों को भरता है, वह न तो जंगलवासी का पेट भरता है न ही रोज़गार देता है, उल्टे व्यापारी एवं जंगल माफिया कीमती पेड़ सस्ते दामों में खरीदकर ऊँचे दामों पर बेचते हैं और करोड़पति बन जाते हैं। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरते हैं या जेल जाते हैं। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी ज़मीन के मालिक बनने के बजाय पहले मज़दूर बने, फिर बंधुआ मजदूर। पहले वे वनपति, भूमिपति और किसान थे। उनके अपने खेत थे, जिन पर परस्पर सहयोग से सामूहिक खेती होती थी। व्यक्तिगत संपत्ति शब्द से वे अनजान थे। आज़ादी के बाद विकास की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनीं, जिनके घर उजड़े, जिनके खेत और गाँव डूबे, वे आदिवासी स्थाई रूप से कहीं बस नहीं पाए।

आदिवासी और जनजाति लोग जिनकी आबादी सात करोड़ से ऊपर हैं, क्रूर पूंजीवादी और अर्धसामंती शोषण के शिकार हैं। ज़मीन उनके हाथ से निकल गई, जंगल के अधिकार छिन गए और वे ठेकेदारों तथा भूस्वामियों के लिए सस्ती और बंधुआ मज़दूरी के स्रोत बन कर रह गए। पूंजीवादी, भूस्वामी ठेकेदार गठ जोड़ इनके नेतृत्व को कुछ रियासतें देकर उनकी परंपरागत एकजुटता को भंग करने की कोशिश करके, उनके जायज़ अधिकारों से न केवल उन्हें वंचित करते हैं बल्कि उन्हें बर्बर ताकत के साथ कुचलते भी हैं।

आदिवासियों के शोषण से मुक्ति के संघर्ष को वर्गसंघर्ष एवं व्यापक जनवादी आंदोलन के हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए। इसलिए संवैधानिक सुरक्षा-उपायों, प्रशासनिक ढाँचों की सीमाओं के सवाल को इस बुनियादी समस्या के दायरे में रखकर ही देखना चाहिए कि आदिवासी जनगण की पहचान की रक्षा कैसे की जाए। यह भी सोचने की आवश्यकता है। अपनी पहचान की हिफाज़त करने तथा पूंजीपति, जर्मीदार, ठेकेदार तथा महाजन के भयावह शोषणों का मुकाबला करने के लिए आदिवासी जनता के संघर्ष का लंबा इतिहास रहा है। इसी संघर्ष को व्यापक बनाकर आगे

बढ़ाने की ज़रूरत है। इस सच्चाई को ध्यान में रखते हुए, आदिवासी जनता के हितों की हिफाज़त करना सर्वोच्च प्राथमिकता है। ऐसा ढाँचा विकसित किया जाए जिससे आदिवासी और गैरआदिवासी को साथ लेते हुए आदिवासियों के हितों की रक्षा की जा सके।

### संदर्भ

1. ऑक्सफैम रिपोर्ट 2015, आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध, संपादक-लुगुन अनुज; अनन्य प्रकाशन, दिल्ली; प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ. 107
2. बाघ और सुगना मुंडा की बेटे; लुगुन अनुज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2017,2018, आवृत्ति 2019, पृष्ठ 38
3. आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, लुगुन अनुज, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली; प्रथम संस्करण 2015, द्वितीय संस्करण 2018, पृष्ठ 114,115

4. पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ 36
5. टोप्पो महादेव, जंगल पहाड़ के पाठ; अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली; प्रथम संस्करण 2017, द्वितीय संस्करण 2021, पृष्ठ 89

6. गुप्ता रमणिका, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली; प्रथम संस्करण 2008, द्वितीय संस्करण 2018, पृष्ठ 12

◆ शोधार्थी (पी.एच.डी)

हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज  
मो. 9044657081

vedprakashsingh034@gmail.com

## रतन थियाम के रंगमंच में संस्कृति, परम्परा और समकालीनता



(उपनिवेशन की प्रक्रिया केवल भागौलिक और राजनीतिक प्रक्रिया नहीं है। यह संस्कृति के क्षेत्र में भी देखी जा सकती है। इसके अवशेष आज भी उपनिवेशी देशों में देखे जा सकते हैं। अंग्रेजों की राजनीतिक गुलामी के बाद

पश्चिम की मानसिक तथा सांस्कृतिक दासता से आज़ाद होने की प्रक्रिया में जड़ों के रंगमंच का मुहावरा हमारे सामने आता है। इसके परिणामस्वरूप हिन्दी के साथ-साथ प्रादेशिक रंगमंच के रूप में एक राष्ट्रीय रंगमंच की पहचान के रूप में क्षेत्रीय रंगमंच की भी वैश्विक स्वीकृति को देखा जा सकता है जिसमें हबीब तनवीर, विजय तेदूलकर, बादल सरकार, गिरीश कारनाड तथा चन्द्रशेखर कम्बार आदि के नाटकों को देखा जा सकता है। रतन थियाम का रंगमंच भी इस प्रक्रिया की महत्वपूर्ण

### ◆ सुनील कुमार

कड़ी है। इस पूरी प्रक्रिया में भारतीय रंगमंच की पहचान व अस्मिता के रूप में परम्परा के साथ साक्षात्कार होने का सिलसिला चला। इस संदर्भ में आधुनिकता को पूरी तरह से ध्यान में रखा गया जिसमें आधुनिकता को पश्चिमीकरण की अपेक्षा परम्परा को समकालीन बनाने की प्रक्रिया में देखा जा सकता है। आधुनिक संदर्भों में ढालने, बदलने और उसे जीवंत बनाने में ही परम्परा की सार्थकता को सिद्ध किया जाने लगा। इस प्रकार देशज शैली में ही यहाँ की समस्याओं को अभिव्यक्त किया जाने लगा जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और सारे अंतर्विरोधों को पूरी गहनता से अभिव्यक्त करने में सक्षम है क्योंकि देशी समस्याओं को देशज शैली के माध्यम से अभिव्यक्ति ही श्रेयस्कर हो सकती है। भारतीय रंगमंच में अस्मिता की तलाश इसी छटपटाहट का एक रूप है। रतन थियाम के रंगमंच में परम्परा की समकालीनता को देखा जा सकता है, जिसमें वे परम्परा



के माध्यम से विश्व के साथ संवाद करते हैं। वे मणिपुरी भाषा के माध्यम से वहाँ की पारम्परिक कलाओं यथा वारीलीबा, कुरतल चोलम, पून चोलम, थंगता, लाइरिक थिबाहाईबा आदि के कलात्मक प्रयोगों के द्वारा पारम्परिक लोक कलाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हुए अपने नाटकों को समकालीन प्रसंगों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। लौकिक परम्पराओं से ही उनके रंगमंच को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान मिली।)

**बीज शब्द-** संस्कृति, परम्परा, लोक कलाएँ, जड़ों का रंगमंच, रंगमंचीय अस्मिता, कोरस रेपेट्री थिएटर, लोक और शास्त्र, और मणिपुर।

रतन थियाम मणिपुरी रंगमंच के अग्रणी रंगकर्मी हैं। वे अपनी सृजनात्मकता में लौकिक परम्पराओं, इतिहास और मिथक को माध्यम बनाकर अपने प्रदर्शन में प्रयोग करते हुए नज़र आते हैं। उनके नाटकों में वैश्विक शक्तियों की भारतीय सभ्यता पर गहराये संकटों के रूप में संस्कृति के प्रति गहरी चेतना देखने को मिलती है। वे अपनी संस्कृति को लेकर सचेत दिखाई देते हैं और उसे वैश्विक संस्कृति के बीच में देखते हैं। इस प्रक्रिया में उत्पन्न होनेवाले प्रश्न केवल मणिपुर तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि विश्व संस्कृति के लिए भी अर्थपूर्ण प्रतीत होते हैं। उनका रंगकर्म पूर्वी और पश्चिमी रंगकर्म के बीच सेतु का कार्य करता है, जहाँ आधुनिकता की अभिव्यक्ति परम्परा के माध्यम से ही प्रस्तुत होती है। उनके रंगकर्म में पश्चिम की यथार्थवादी रंग शैली का प्रभाव तो है, साथ ही उसके नाट्य शिल्प में मणिपुर की संस्कृति के रूप में उसकी जीवन्त परम्पराएँ भी निहित हैं जिसे भाषा के स्तर के साथ-साथ शैली की लौकिक परम्पराओं के रूप में भी देखा जा सकता है। सुभाष चन्द्र दास का मानना है कि “इन लौकिक परम्पराओं से ही उनके रंगमंच को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान मिली।”<sup>1</sup> क्योंकि परम्परा के बिना समकालीनता को प्रदर्शित करना रंगमंच में बहुत मुश्किल काम रहा है। इसे समकालीन संदर्भ में समझना ज़रूरी होता है क्योंकि कला और संस्कृति की जड़ें परम्परा और सभ्यता में निहित होती हैं।

मणिपुर की सांस्कृतिक विरासत से प्रेरणा ग्रहण करते हुए उन्हें नये रंग मुहावरे की स्थापना करने में सहायता मिली। वे कहते हैं कि “मेरी जड़ें मुझे रचनात्मक रूप से विकसित करने में मदद करती हैं। मैं केवल प्राचीन ज्ञान लेकर उसे अपनी कला के रूप में अपनी भावी पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ और मेरी यह कला मेरी पहचान के निरंतर विकसित होने की प्रक्रिया है।”<sup>2</sup> वह अपनी परम्पराओं से भागते नहीं, बल्कि उनका साक्षात्कार करते हैं, क्योंकि उनका मानना था कि परम्परा में ही आप सृजनात्मकता का विकास कर सकते हैं। हाइटेक तकनीकी युग में मनुष्य न्यूक्लियर की कील पर खड़ा है, कहीं आतंकवाद का साया है, कहीं लूटपाट और मुनाफे का साया है। असमानता के संदर्भ में इसका विकराल रूप हमारे सामने आता है। पूरी दुनिया पहले, दूसरे और तीसरे वर्ग में बंटी हुई है। क्या यह संस्कृति हमारी अपनी है? भारत की है? ऐसा कदपि नहीं है। इस प्रकार समूची संस्कृति को भी समाप्त करने का युद्ध चल रहा है ताकि आप भी उसी भूमंडलीय संस्कृति का हिस्सा बन जायें जो मार्केट आधारित है। रतन थियाम का ‘नाइन हिल्स वन वैली’ इस भूमंडलीय संस्कृति को चुनौती देनेवाला नाटक है। इस नाटक में नर्तकियों के हाथ काटने की घटना इस ओर हमारा संकेत करती है। रतन थियाम का मानना है कि “जब तक हम हैं उसे बार-बार उगायेंगे।”<sup>3</sup>

थियाम के रंगकर्म का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि उनके रंगकर्म में लिटिल व स्टैंडर्ड ट्रेडीशन का समन्वित रूप सम्मिलित है। इसमें लौकिक व क्षेत्रीय रंग परम्पराएँ तो हैं, साथ में पाश्चात्य यथार्थवाद और संस्कृत के नाट्यशास्त्र का भी स्पष्ट प्रभाव है। किन्तु इनके रंगकर्म को न केवल शास्त्रीय और लोक रंग कहा जा सकता है और न ही यथार्थवादी। इन तीनों के समन्वय से इनकी रंगशैली विकसित होती है जिसमें परम्परा के प्रति आग्रह है। एक साक्षात्कार में वे कहते हैं कि “समकालीन रंगमंच में पारम्परिक शैलियों के साथ प्रयोग को लेकर मैं उत्सुक था..... और पारम्परिक कलात्मक शैली का यह क्षेत्र मेरे लिए हमेशा से रुचिकर रहा है।”<sup>4</sup> इब्राहिम अल्काज़ी की रंग दृष्टि से

परिचित होने पर भी उनकी रंग दृष्टि यथार्थवादी रंग शैली के विपरीत लौकिक व शास्त्रीय रंग परम्पराओं में विकसित होती हुई प्रतीत होती है। रा.ना.वि से प्रशिक्षण ग्रहण करने के बाद वह अपनी भूमि मणिपुर जाते हैं, जहाँ वह अपने विचारों को साझा करते हुए मणिपुर की संस्कृति में योगदान के निमित्त इम्फाल में कोरस रेपेट्री की स्थापना करते हैं और स्थानीय कलाकारों के साथ रंगकर्म में व्यस्त हो गये। यह वही समय था जब जड़ों के रंगमंच का मुहावरा ज़ोर पकड़ रहा था। इसी प्रक्रिया में रतन थियाम का रंगमंच उभरकर सामने आता है जो उपनिवेशी रंग पद्धतियों को अस्वीकार करते हुए निजी शैली की खोज में परम्पराओं में अपनी अस्मिता को देखता हुआ प्रतीत होता है। अपने एक साक्षात्कार में वे कहते हैं कि “पारम्परिक शैली एक महान चीज़ है जिसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। परम्परा के बिना मैं कहीं भी नहीं। अपने रंग निर्देशन में जो भी मैं चित्रित करता हूँ और जिसके साथ प्रयोग करता हूँ परम्परा से ही लिया गया है।”<sup>5</sup> जब वे परम्परा का अवलोकन करते हैं तो रंगमंचीय सामग्री के रूप में उन्हें लोक नाट्यों और संस्कृत रंगकर्म के रूप में अमूल्य निधि के दर्शन होते हैं जिसके साथ वे अपने रंगकर्म में वैविध्यमयी प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। उनका मानना था कि कोई भी चीज़ जड़ों के बगैर नहीं उग पाती। यही कारण है कि वे नाट्यशास्त्र के साथ-साथ लोक नाट्यों का प्रयोग करते हैं। रतन थियाम कहते हैं कि “नाट्यशास्त्र को बगैर जाने, बागैर पढ़े, उसके भीतर की चीज़ों को बागैर समझे ठुकराना बहुत आसान है, लेकिन वह जब समझ में आ जाता है, उसे ठुकराना उतना आसान नहीं होता।”<sup>6</sup> यद्यपि इसकी प्रासंगिकता नहीं होती तो आज तक संस्कृत के कोई भी नाटक न खेले जाते। रतन थियाम ने स्वयं कर्णभारम्, उरुभंगम, ऋतुसंहार आदि नाटकों का कई बार मंचन किया है। थियाम भारतीय क्लासिक रंग परम्परा के साथ-साथ मणिपुर के लोक रंग को सहज ही अपने नाटकों में अपनाते हैं। उनके यहाँ लोक आभूषण या सजावट का सामान न होकर अपनी पूरी अर्थव्यवस्था के साथ प्रयुक्त हुआ है। यह लोक उनकी

अस्मिता की पहचान है, मणिपुरी संस्कृति की पहचान है और उनके लेखन और प्रदर्शन की एक शैली है।

भरत ने ‘नाट्यशास्त्र’ में लोक, वेद और अध्यात्म को प्रमाण मानते हुए लोक की महत्ता को स्वीकारा है। थियाम ने अपने नाटकों में परम्पराशील नाट्यों का सम्यक प्रयोग किया है, क्योंकि वे उनकी जीवंतता को जानते थे और उनकी सीमाओं से भी भली भाँति परिचित थे। वे कहते हैं कि “मैं समझता हूँ लोक रंगकर्म और अन्य पारम्परिक कलारूपों के मूल स्वरूप के अध्ययन के सहारे आप आधुनिक रंग युक्तियों की प्रेरणाओं तक आसानी से पहुँच सकते हैं।”<sup>7</sup> पारम्परिक प्रदर्शनों की यही शक्ति हमारी अस्मिता के साथ जुड़ी है। इसी अस्मिता की चेतना के फलस्वरूप रतन थियाम अपने निर्देशन में लोक का प्रयोग करते हुए प्रतीत होते हैं। मणिपुर संस्कृति की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध प्रदेश रहा है। इसमें मित्ताई परम्परा के साथ-साथ भारतीय परम्परा का भी अभूतपूर्व योगदान रहा है। इसके कारण यहाँ रासलीला, महभारत तथा रामायण आदि को प्रस्तुत करने के लौकिक स्वरूपों का उद्भव हुआ। थियाम ने इन रूपों के साथ कई प्रयोग किए और इसमें वे सफल भी रहे। एक डॉक्यूमेंट्री के अनुसार वे “अपनी प्रेरणा कुरतल चोलम, पून चोलम, रासलीला और वारीलीबा आदि से ग्रहण करते हैं। इनके रंगमंच में इन सभी पारम्परिक नृत्य शैलियों का प्राकृतिक संबंध है।”<sup>8</sup> लाईहरोबा मणिपुर का एक अनुष्ठानात्मक रंगकर्म है। इसमें संगीत, नृत्य तथा नाट्य आदि सब कुछ हैं। इसकी प्रक्रिया एक अनुष्ठान से शुरू होकर नाट्य के रूप में समाप्त हो जाती है। रतन थियाम का मानना है कि “लाईहरोबा अपने आप में पूरा रंगकर्म है, जिसमें हर एक चीज़ को प्रस्तुत किया जाता है। वह उतना ही प्राचीन है जितनी मानवीय सक्रियता.....वह ओपेरा की तरह गान के अधिक निकट है। उसमें अभिनय बहुत रोचक तरीके से किया जाता है। यह मूलतः मणिपुर के ही लौकिक देवी-देवताओं का उत्सव है जो ग्रीष्म ऋतु के आगमन के साथ ही किया जाता है।”<sup>9</sup> यह एक महीने की अवधि तक भी चल सकता है। ‘ऋतुसंहार’ नाटक में इसी

प्रकार की एक लौकिक शैली लाईरिक थिबा हाईबा के साथ एक प्रयोग उन्होंने किया है। “‘लाईरिक’ का अर्थ है पोथी, ‘थिबा’ का अर्थ है पाठ और ‘हाईबा’ का अर्थ है बोल देना, व्याख्या करना। इसमें पोथी का राग के अनुसार पाठ किया जाता है।”<sup>10</sup> इसकी बहुत पुरानी परम्परा मणिपुर में रही है, जिसमें गायक के साथ एक व्यक्ति रहता है। गायक पदों को रागानुसार गाता है और व्यक्ति इसकी व्याख्या करता है। उनके रंगकर्म का एक महत्वपूर्ण पहलू ‘वारीलीबा’ के साथ वैविध्यमयी प्रयोग है। वारीलीबा मणिपुर की एक आख्यान पद्धति है। “‘वारी’ का अर्थ है कथा ‘लीबा’ का अर्थ है कहना। यह एक बड़ा दिलचस्प कलारूप है। इसमें एक तकिया रखते हैं और उसी के साथ कहानी कहते हैं।”<sup>11</sup> इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह कहानी कहने की एक परम्परा है। इसमें मिथकों के साथ-साथ लौकिक आख्यानों को भी स्थान दिया जाता है। किन्तु मूल रूप से इसमें रामायण और महाभारत की कथाएँ निहित रहती हैं। ‘अंधा युग’ नाटक में संजय के चरित्र के साथ इसका प्रयोग किया गया है। इसे मूलतः छंद में ही पढ़ा जाता है। यह आख्यान शैली क्षेत्रीयता के साथ गहन संबंधित है। इसमें क्षेत्रीयता को ध्यान में रखकर दृश्यावलियाँ तैयार की गयी हैं। अपने इलाके के पेड़-पौधों आदि को इसमें लाया गया है। इसमें यह दिखाया गया है कि भीम बहुत खाता है, वह पेटू है। इसी तरह पकवानों में भी उसे इरोम्ब खाते हुए दिखाया जाता है, जो यहाँ का एक चावल है।

थियाम अपने नाटकों में लौकिक मार्शल कला ‘थंग ता’ को स्थान देते हैं। नाटक में जहाँ भी कहीं युद्ध आदि का दृश्य हो उसे ‘थंग ता’ में ही सम्पन्न किया गया है। यह युद्ध कला मणिपुर से संबंधित है। “इसमें ‘थंग’ शब्द का अर्थ है तलवार और ‘ता’ का अर्थ है भाला। इस कला में तलवार, ढाल और भाले का प्रयोग किया जाता है।”<sup>12</sup> इस कला का प्रयोग आत्मरक्षा व युद्ध कला के साथ-साथ पारम्परिक लोक नृत्य के रूप में भी किया जाता है। अतः उनके रंगकर्म का अवलोकन करने के साथ देखा जा सकता है कि उनका रंगकर्म

परम्परा के अन्वेषण में अपनी रंग सार्थकता की अस्मिता को तलाशने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। यह मणिपुर की समृद्ध संस्कृति को रेखांकित तो करता ही है। परम्परा उनके रंगमंच में कोई मरी हुई चीज़ नहीं है। यह भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का वह रूप है जिसमें रंगमंच की अर्थवत्ता छिपी हुई है। इसमें हमारे देश के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं को उदघाटित करने का प्रयास इन्होंने अपने रंगकर्म के माध्यम से किया है।

रतन थियाम के नाटकों की भाषा मणिपुरी है। उन्होंने अपने नाटकों के लिए किसी मानक या स्टैंडर्ड भाषा का चुनाव नहीं किया, बल्कि लोक भाषा के द्वारा ही अपने नाटकों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। वे कहते भी हैं कि “एक छोटे राज्य से आता हूँ विश्व से संवाद करता हूँ।”<sup>13</sup> यह संवाद वे अपनी लौकिक भाषा के ही माध्यम से करते हैं। इनके नाटकों का मंचन केवल मणिपुर में नहीं हुआ है बल्कि देश-विदेश में कई स्थानों पर हुआ है। वे रंगमंच में भाषा को एक पहचान के रूप में देखते हैं। किसी भी भाषा में व्यक्त विचार अनन्त होते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि भाषा ही व्यक्ति की पहचान को निर्मित करती है। भूमंडलीकरण के इस दौर में इस पहचान का होना बहुत ज़रूरी है। रतन थियाम सांस्कृतिक अस्मिता के निमित्त भाषा के चयन में सावधानी बरतते हैं। रंगमंच के सन्दर्भ में भाषागत चयन के रूप में इस प्रकार की छूट हो सकती है। क्योंकि नाटक की अपनी रंगभाषा होती है जो मंचित होने के साथ अभिव्यक्त होती है। रतन थियाम कहते हैं कि “शब्द आवाज़ और शब्द की लय स्वयमेव में एक मज़बूत माध्यम है जिससे सहज ही यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि नाटक में क्या हो रहा है।”<sup>14</sup>

उन्होंने रंगमंच में मिथकों के द्वारा राजनीतिक और नैतिक आलोचना की है। चक्रव्यूह के माध्यम से वे युद्ध व हिंसा के प्रति प्रोटेस्ट करते हैं। महाभारत की नाट्यत्रयी में रतन थियाम ने भास के उरूभंगम और कर्णभारम के साथ वैविध्यमयी प्रयोग किये। इस नाट्यत्रयी में उनका तीसरा महत्वपूर्ण नाटक है चक्रव्यूह। रतन के

नाटक मिथकों की परम्परा में महाभारत के कथा प्रसंगों से अधिक प्रभावित रहे हैं। उनके रचना-संसार में उनकी दृष्टि मूल नायकों की अपेक्षा अपराधी, दोषी या खलनायक पर है जिन्हें वे नायक के रूप में स्थापित करते हैं। 'चक्रव्यूह' नाटक के माध्यम से रतन थियाम अभिमन्यु के रूप में युवाओं को केन्द्र में रखकर उनकी समस्याओं को केन्द्र बनाते हुए युद्ध और हिंसा को आलोचनात्मक ढंग से अभिव्यक्ति करते हैं। पांडवों और कौरवों के इस युद्ध को रतन थियाम आज के सूपर पावर देशों यथा अमरीका और रूस के रूप में देखते हैं और अन्य राज्यों को अन्य मुल्कों के रूप में देखने का प्रयास किया है। इसी के साथ-साथ अभिमन्यु को एक उपकरण के रूप में देखते हैं। नाटक का मूल विषय विश्वास और छल पर आधारित है। अभिमन्यु की वीरगति मणिपुर के सामाजिक और राजनीतिक आयामों पर प्रकाश डालती है। अभिमन्यु के चक्रव्यूह को वे आर्म्ड फोर्स स्पेशल पॉवरस् एक्ट (अफसपा) के रूप में देखते हैं। नाटक के आरम्भ में ही अभिमन्यु को अपनी माता की गोदी में सोते हुए दिखाया गया है। जब महाभारत का युद्ध शुरू होता है तो वह अपनी माता से युद्ध में जाने के लिए हठ करता है। वह महाभारत में साहस के साथ लड़ता है, पर धोखे से मार दिया जाता है। नाटक के अंत में उसे युद्धभूमि में दिखाया गया है जहाँ वह मृत्यु शैया पर लेटा हुआ है और कहता है कि "हे महान राजाओ और इस विश्व के सम्राटो, सत्ता की आड़ में .....तुमने अपने अंधे अहं और शक्ति के अनुचित प्रयोगों द्वारा इस पाक और पवित्र धरती को प्रदूषित किया है।"<sup>15</sup> मित्ताई लोगों की समस्या को महाभारत के प्रसंगों में स्थापित करते हुए विश्व समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है।

'उरूभंगम' नाटक मूलतः भास द्वारा रचित है जिसे रतन थियाम ने मणिपुरी में प्रस्तुत किया है। यद्यपि दुर्योधन महाभारत में खलनायक की भूमिका के रूप में चित्रित किया गया है, थियाम ने उसे इस रूप में चित्रित न कर उसके कर्तव्यबोध को दिखाया है। रतन थियाम के अनुसार कि दुर्योधन कहता है कि "मैंने इतनी तरह के

बलिदान किये और जो भी किया एक राजा की तरह ही किया। एक राजा को यही करना चाहिए था। राजा सामान्य व्यक्ति नहीं होता।' वह कहता है कि "जो भी जीवन में करने योग्य है, वह कर चुका है। इसलिए कोई पछतावा नहीं है।' दुर्योधन के चरित्र को महान बना देता है पश्चाताप का अभाव। इसे ही राजा की मर्यादा कहा जा सकता है।"<sup>16</sup> 'मणिपुर नाट्यत्रयी' इनके तीन नाटकों का संकलन है। वाहउदोक जो 'प्रोलाग' नाम से अंग्रेज़ी में अनूदित है। इसी त्रयी में उनका दूसरा नाटक है 'नुंगशिबी पृथिवी' जो अंग्रेज़ी में 'माई अर्थ माई लाव' नाम से अनूदित हुआ है। इसी कड़ी में इनका तीसरा नाटक है चिंगलांग मपान ताम्पक अमा जिसे 'नाइन हिल्स वन वैली' नाम से अनूदित किया गया है। यह नाट्यत्रयी अद्भुत नाट्य संग्रह है, जिसमें मणिपुरी संस्कृति और परम्परा की छटा दिखाई पड़ती है। इसमें इतिहास के साथ-साथ मिथकों का भी सहारा लिया गया है। इसके अतिरिक्त नाटककार ने नाटकों को लेकर कई प्रयोग किए हैं चाहे वह हिन्दी के नाटकों को लेकर हो, या अंग्रेज़ी को लेकर। इनकी शैली की यह विशेषता है कि वह क्षेत्रीय बोली अर्थात् मणिपुरी के द्वारा ही विश्व संस्कृति में अपने नाटकों को लोकेट करते हैं।

'अंधा युग' नाटक के निर्देशन में उन्होंने नया प्रयोग किया है जो इब्राहिम अल्काज़ी के 'अंधा युग' से बिल्कुल अलग है। वह इस रूप में है कि उनके इस निर्देशन में उत्तरा के गर्भ में परीक्षित का आना नयी पीढ़ी के आगमन की सूचना को रेखांकित करता है और यही इसकी महत्ता है। किन्तु यह पीढ़ी किस तरह प्रभावित है उसे भी निर्देशक ने दिखाने का प्रयास किया है। उन्हीं के शब्दों में "परीक्षित जन्म लेता है, पर वह बीमार है। मेरी द्रष्टि में यह बहुत बड़ा आघात है। इसलिए मैंने इसे दिखाया कि ऐसी चीज़ें न्यूक्लियर शक्ति के कारण होती रहेंगी। अन्धा युग युग का अंधापन है, अंधों का युग है, हम अंधे लोग हैं"<sup>17</sup> 'उत्तरप्रियदर्शी' नाटक में भी युद्ध के परिणामों को दिखाने की कोशिश की गई है। इसी संदर्भ में उन्होंने महाभारतत्रयी किया जिसमें कर्णभारम, उरूभंगम और चक्रव्यूह नाटक हैं।

महाभारत के युद्ध के संदर्भ में भी उनकी नयी व्याख्या है कि वे कौरवों और पांडवों के युद्ध को महाशक्तियों के युद्ध के रूप में देखते हुए अमरीका और रूस को देखते हैं। उन्होंने जो भी नाटक किए उनमें से अधिकांश समकालीन समस्याओं से जुड़ते हुए दिखाई देते हैं चाहे वह मणिपुरी के नाटक हों, हिन्दी से मणिपुरी में किये नाटक हों या अंग्रेज़ी से मणिपुरी में किए नाटक हों। मणिपुर भी कई समस्याओं से घिरा क्षेत्र है। इम्फाल इम्फाल नाटक मणिपुर की ही समस्याओं को रेखांकित करता है। उनके नाटकों में राजनीतिक कमेंट भी है और युद्ध आतंकवाद आदि समस्याओं के साथ साक्षात्कार के साथ-साथ इनके प्रति एक मज़बूत विरोध भी है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उनका रंगकर्म लौकिक परम्पराओं के माध्यम से वैश्विक पहचान के रूप में सतत संघर्षशील है। उनके लिए रंगकर्म एक प्रोटेस्ट का माध्यम है जो मौन रूप से चलता है जिसके माध्यम से वे अपने एक्टिवीज़म को निरंतर बनाये रखते हैं। वर्तमान जगत की समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए उनका रंगकर्म निरंतर प्रयत्नशील होकर लोक परम्पराओं, मिथकों तथा इतिहास का पुनरवलोकन करता हुआ इसे वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक परिपेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। शैली के स्तर पर इनके रंगकर्म में अपनी अस्मिता के प्रति छटपटाहट है जिसके लिए वे शास्त्रीय व पारम्परिक रंगमंच के साथ-साथ यथार्थवादी रंगमंच के कई प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। मणिपुर की पारम्परिक कलाएँ उनके रंग प्रदर्शनों में महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में दिखाई देती हैं, जिनमें पारम्परिक युद्ध कला थंग ता, पारम्परिक नृत्य नट संकीर्तन, लाई हरोबा, वारीलीबा, रासलीला आदि, पारम्परिक गायन शैली में लेरिक तथा लेरिक हेबा थिबा आदि का अदभुत समागम है। इस प्रकार उनके रंगमंच में पारम्परिक कलाओं तथा लोक, मिथक व इतिहास के समन्वय के साथ मणिपुर की रंग संस्कृति के दिग्दर्शन होते हैं जो उनकी निजी पहचान के साथ वहाँ की सांस्कृतिक परम्परा की द्योतक भी है।

## संदर्भ सूची

1. सुबाष चन्द्र दास, री इनवेंटिंग आइडेंटिटी थिएटर ऑफ रूट्स एण्ड रतन थियाम, दि न्यू जर्नल, जनवी-जून, 2016, पृ.105।
2. रतन थियाम, मणिपुर ट्रिलोजी, पृ.112।
3. उदयन वाजपेयी, भव्यता का रतन थियाम से संवेदना, पृ.35
4. रतन थियाम, द हीलिंग वोइस, <https://www.youtube.com/watch?v=EDQZL5M-wPw>
5. वही
6. संगीता गुंदेचा, नाट्यदर्शन, पृ.105
7. उदयन वाजपेयी, भव्यता का रतन थियाम से संवेदना, पृ.41
8. Rataan: A documentary on Rattan Thiyam, Directed by Papiya Roy, Nayana visions, 4 april 2020  
<https://www.youtube.com/watch?v=biU61uuJGJM>
9. संगीता गुंदेचा, नाट्यदर्शन, पृ.141
10. उदयन वाजपेयी, भव्यता का रतन थियाम से संवेदना, पृ.88
11. वही, पृ.88
12. [www.google.com/amps/www.13thtv.in/thang-ta-history-of-a-manipuri-martial-art/amp](http://www.google.com/amps/www.13thtv.in/thang-ta-history-of-a-manipuri-martial-art/amp)
13. संगीता गुंदेचा, नाट्यदर्शन, पृ.101
14. रतन थियाम, द हीलिंग वोइस, <https://www.youtube.com/watch?v=EDQZL5M-wPw>
15. कविता नागपाल, चक्रव्यूह, पृ.52।
16. उदयन वाजपेयी, भव्यता का रतन थियाम से संवेदना, पृ.41
17. वही, पृ.74

◆ शोधार्थी

हिन्दी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय  
केन्द्र शासित प्रदेश जम्मू।  
9622053224

Sunilkthakur092@gmail.com



## गायत्री : मानवजाति का महामंत्र

♦ डॉ. पूर्णिमा.आर

मनन करनेवाले को त्राणन करने की क्षमता मंत्र में है। मनुष्य का मन जब अज्ञान से परिपूर्ण होता है, मंत्रोच्चारण से उसकी सफाई स्वतः हो जाती है। गायन करनेवालों की रक्षा करने में सक्षम मंत्र है 'गायत्री'। यह सूर्य को समस्त सृष्टि का नाथ मानकर उपासना करनेवाले महान मनीषियों का मंत्र है।

प्राचीनकाल में हमारी देवताएँ किसी इमारत के चहरदीवारी में बन्द थीं। महान ऋषि-मुनियों ने प्रकृति के चर-अचर में ईश्वरीय चैतन्य महसूस किया। सूर्य सृष्टि का प्रत्यक्ष देव था। उसे संपूर्ण चेतना का केन्द्र मानकर उपासना करता था। सूर्य नमस्कार और गायत्री मंत्र इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। भारत के महान ऋषियों की तपस्या का फल है गायत्री मंत्र। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान ने स्वयं कहा है - ' 'गायत्री छन्दसामहम' - गायत्री मंत्र मैं स्वयं ही हूँ।

भारतीय पुराण और शास्त्र में 'गायत्री मंत्र' का विशेष महत्व है। वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र गायत्री ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों में आता है। ऋग्वेद के तीसरे मंडल के बासठवें सूक्त में मौजूद दसवाँ श्लोक है गायत्री। ऐसा विश्वास किया जाता है कि हजारों वर्ष पुराने इस वैदिक मंत्र की रचना त्रेतायुग में महर्षि विश्वामित्र ने की।

“ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्”

ॐ - प्रणव

भुर - मनुष्य को प्राण प्रदान करनेवाला

भुवः - दुखनाशक

स्वः सुखदायक

तत - वह, सवितुर - सूर्य समान शोभावाला

वरेण्यं - सबसे उत्तम

भर्गो - कर्मों का उद्धार करनेवाला

देवस्य - प्रभु

धीमहि - आत्म चिन्तन के योग्य

धियो - बुद्धि, यो- जो, नः - हमारी

प्रचोदयात् - हमें शक्ति दे

उस प्राणस्वरूप, दुखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अंतकरण में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

We meditate on the most acceptable, radiant splendor of the almighty, who is the life breath of all creation, dispeller of miseries and bestower of happiness. We seek his grace that he may so enlighten and inspire our intellect that our conduct may ever be righteous in thought, word and deed.

देश में विद्यार्थियों से गायत्री मंत्र का पाठ करवाने की सदियों पुरानी परंपरा है। इसके नियमित एवं निरंतर जप से विद्यार्थियों का दिमाग तेज़ और जागृत होता है।

हिन्दू धर्म में गायत्री मंत्र को विशेष मान्यता प्राप्त है। इसके उच्चारण से व्यक्ति तेजस्वी बन जाता है, उसकी श्रेष्ठता और कीर्ति बढ़ती है। इनसान के सभी पापों का नाश होता है, शरीर निरोग बन जाता है। मानसिक शान्ति के आने से चेहरे की चमक बढ़ती है। मानसिक रूप से अपार शान्ति का अनुभव वह कर सकता है। इससे उसका गुस्सा कम होता है, बुद्धि तेज़ और जागृत हो जाती है।

शास्त्रों के अनुसार गायत्री वेदमाता हैं एवं इनसान के समस्त पापों का नाश करने की शक्ति उनमें है। गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी कहा गया है।

मानव के तीन प्रकार के शरीर होते हैं- स्थल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। इन तीनों को अपार सुख-शान्ति देनेवाला मंत्र है गायत्री। जो इस मंत्र का जप करता है- वह दुख सागर को पार कर परम आनन्द की प्राप्ति करता है।

गायत्री मंत्र के ठीक उच्चारण से शरीर में एक विशेष कंपन पैदा होता है, यह कंपन हमारे शरीर के कोशों को जागृत करता है, उन्हें शुद्ध बनाता है। शुद्ध हुए कोशों के उपासक मंत्रोच्चारण करके अपने इष्टदेव को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं। गायत्री मंत्र का ठीक उच्चारण करने से व्यक्ति के जीवन में खुशियों का संचार होता है।

## स्त्रियाँ और गायत्री मंत्र

प्राचीनकाल में समाज के कुछ लोगों से गायत्री मंत्र का रहस्य छिपाकर रखा गया था। मध्यकाल में स्त्रियों के लिए यह मंत्रोपासना निषिद्ध थी। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। पुरुषसत्ता प्रधान सामाजिक व्यवस्था में इस प्रकार की मनोवृत्ति अत्यन्त स्वाभाविक थी। पुरुषों को लगता था कि यदि स्त्रियाँ भी गायत्री का जाप करेंगी तो उनमें बुत शक्तियाँ आ जायेंगी- उपचार करने की शक्ति और उसकी संकल्प शक्ति बढ़ेगी। आज ज़माना बदल गया है, महिलाएँ आज गायत्री मंत्र का पाठ करती हैं।

## गायत्री मंत्र की वैज्ञानिकता

गायत्री मंत्र के अद्भुत प्रभाव और आश्चर्यजनक चमत्कार को पहचानकर उसके वैज्ञानिक पक्ष को जाँचने का कार्य कई विद्वानों ने किया। AIIMS के वैज्ञानिकों ने 1998 से इस पर शोध जारी किया। सबसे पहले AIIMS के डॉक्टरों ने पच्चीस से तीस वर्ष तक के पुरुषों पर इसका प्रयोग किया। शोध के लिए लोगों को दो ग्रुप में बाँटा। पहले ग्रुप ने रोज़ 108 बार गायत्री मंत्र का जप किया, दूसरे ग्रुप ने मंत्रपाठ न किया। नौ महीने तक रिसर्च और 5 वर्षों तक इसके डेटा (आधार सामग्री) का विश्लेषण किया गया। मंत्रोच्चारण से दिमाग के आगे के हिस्से में होनेवाले बदलाव का अध्ययन किया गया। जाँच का नतीजा बहुत ही अद्भुत सिद्ध हुआ। जो ग्रुप गायत्री मंत्र का जप कर रहे थे, उनके दिमाग में खुशी के वक्त पैदा होनेवाले रसायन (chemicals) तेज़ी से बढ़ने लगे। इसी तरह का chemical है Gaba। गाबा के कम होने पर नींद नहीं आती और डिप्रेशन जैसी बीमारियाँ होती हैं। गायत्री मंत्र

का जप करने से दूसरे हफ्ते में गाबा रसायन बढ़ने लगा। दिमाग की सक्रियता और सूक्ष्मता इससे बढ़ गयी। वैज्ञानिकों ने साबित किया कि गायत्री मंत्र जादूई दवा के सामान शरीर पर, मन पर, दिमाग पर सकारात्मक परिवर्तन लाने में सहायक है।

जर्मनी के हांबर्ग विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने गायत्री मंत्र पर विशेष शोध किया था। गायत्री की अपार महिमा को उन्होंने भी पहचाना। सुप्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक Dr. Howard Steingeril ने दुनिया भर के मंत्रों को इकट्ठा करके Physiology Laboratory में उसकी जाँच की। यह जानकारी मिली कि गायत्री मंत्र से प्रति सेकंड एक लाख दस हजार ध्वनि तरंगें निकलती हैं। एक विशेष आवृत्ति की ध्वनि तरंगों के संयोजन के माध्यम से यह मंत्र व्यक्ति में विशेष आध्यात्मिक अनुभूति विकसित करता है। दुनिया के सभी मंत्रों में गायत्री मंत्र सबसे सशक्त साबित हुआ। अमेरिका और अन्य देशों में गायत्री मंत्र 7.00 बजे से 15 मिनट के लिए रेडियो पर दैनिक प्रसारित हो रहा है। पिछले तीन सालों से पारामारिबो, सूरीनाम और दक्षिण अमेरिका में और पिछले एक साल से एम्स्टर्डम, हॉलैंड में इसका प्रसारण हो रहा है।

## गायत्री जप के फायदे

इस मंत्र के निरन्तर जप से व्यक्ति निरोग बन जाता है, उसके चेहरे में विशेष चमक आ जाती है। मानसिक रूप से वह शान्त बन जाता है, खुशियों से मन भर उठता है। उसकी इन्द्रियाँ बेहतर होती हैं और गुस्सा कम हो जाता है। चार वेदों के समवेत समन्वय से बने इस मंत्र के जप से इंसान को धन और यश की प्राप्ति होती है। मंत्र जप से मन की एकाग्रता बढ़ने से किसी भी कार्य में व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

## गायत्री मंत्र का सामाजिक पक्ष

गायत्री मंत्र के अद्भुत प्रभाव और आश्चर्यजनक चमत्कार को देश-विदेश के ज्ञानी व्यक्ति पहचानते हैं। मानवजाति की सबसे बड़ी प्रार्थनाओं में एक है गायत्री मंत्र। इसमें ईश्वर से धन, मान और संपत्ति की बिनती नहीं, बल्कि अपनी बुद्धि को प्रज्वलित करने की बिनती

है। “हे भगवान, मुझमें व्याप्त हो जाए, मेरे सारे पापों का नाश करे, अपनी दिव्यज्योति से सारे पापों को जला दे। मेरी बुद्धि को आप ही प्रेरणा दे, मेरी बुद्धि को आप ही मार्ग दिखाए, यह सदैव आपकी दिव्यता से ही प्रेरित हो।” ईश्वर की दिव्य ज्योति में समा जाने के लिए व्यक्ति यहाँ उद्यत दीखता है। अपनी चेतना को प्रज्वलित कर, इस चेतना से दुनिया को उजालामय बनाने की अदम्य इच्छा उसमें है। गायत्री मंत्र का सकारात्मक पक्ष अत्यन्त प्रबल है। व्यक्ति की सकारात्मकता हर समाज के कल्याण की नींव है। व्यक्ति का दिमाग जब प्रज्वलित होता है, समाज की बुराईयाँ खत्म हो जाती हैं। हमारे सभी काम बुद्धि से होते हैं। बुद्धि में कोई विचार आता है, तभी हम कोई कार्य करते हैं। व्यक्ति के मन की नकारात्मकता दूर हो जाती है तो समाज सकारात्मक ऊर्जा से भर उठता है। शारीरिक एवं मानसिक तौर पर स्वस्थ समाज में न कोई बीमारी रहती है, न कोई संघर्ष।

गायत्री के साधक सूर्य की उपासना करते हैं। सूर्य को ही गायत्री माता के रूप में उपासना किया जाता है। आत्मा के अविवेक को दूर करके उसमें नई चेतना को फैलानेवाली तेजोमय शक्ति है सूर्य। हरेक इनसान

गायत्री की उपासना धर्मनिरपेक्ष भाव से कर सकता है। सभी धर्म ग्रन्थों में सूर्य की उपासना का विशेष महत्व है, क्योंकि सूर्य न किसी विशेष धर्म के देवता है। सृष्टि की प्रत्यक्ष देवता हैं। इसलिए गायत्री मंत्र मानवजाति का महामंत्र बन गया है। इस मंत्र का प्रयोग स्वार्थ के लिए नहीं, परमार्थ के लिए किया जाता है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीमद् भगवद्गीता
2. The Secret of the Veda - Sri Aurobindo
3. Effect of Chanting Gatatrimantra Chanting on cognitive functions in school children - K.A Manoj Narayanan, N. Venugopal
4. The Ancient Science of Mantras: Wisdom of the Sages - OmSwami
5. Gayatri Mantra - S. Viraswami Pathar
6. Upanayana, Sandhya Vandana and Gayatri Mantra Japa - Harshananda . S

◆ असोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज  
आलप्पुप्पु

### (पृ.सं.26 के आगे)

5. 'सुख सागर' के रचनाकार कौन हैं?  
(क) इंशा अल्लाखाँ (ख) सदासुखलाल  
(ग) लल्लू लाल (घ) सदल मिश्र
6. 'नासिकेतोपाख्यान' किसकी रचना है?  
(क) सदल मिश्र (ख) रामप्रसाद निरंजनी  
(ग) लल्लू लाल (घ) अमीनुद्दीन आला
7. 'भाषा योगवसिष्ठ' के रचनाकार कौन हैं?  
(क) पं.दौलत राम जैन (ख) रामप्रसाद निरंजनी  
(ग) शाह मीरांजी (घ) मुल्ला वजही
8. 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना कब हुई?  
(क) 1818 (ख) 1880  
(ग) 1800 (घ) 1804

9. 'फोर्ट विलियम कॉलेज' में 'हिन्दुस्तानी' के प्रथम प्रोफेसर कौन थे?  
(क) गिलक्राइस्ट (ख) लार्ड वेलेज़ली  
(ग) वारेन हेस्टिंग (घ) विलियम टेलर
10. 'द ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज़ विथ ए सप्लिमेंट' के रचनाकार कौन हैं?  
(क) लार्ड वेलेज़ली (ख) वारेन हेस्टिंग  
(ग) विलियम टेलर (घ) गिल क्राइस्ट

### सही उत्तर :

- |        |         |        |        |
|--------|---------|--------|--------|
| 1. (घ) | 2. (ख)  | 3. (ग) | 4. (क) |
| 5. (ख) | 6. (क)  | 7. (ख) | 8. (ग) |
| 9. (क) | 10. (घ) |        |        |



# एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में किसानों का जीवन यथार्थ



समकालीन हिंदी कविता में किसानों के जीवन का यथार्थ एवं सूक्ष्म चित्रण हुआ है। भारत कृषकों का देश है। कृषि करनेवाले ग्रामीण लोग किसान कहलाते हैं।

किसान खेती करता है। खेती करनेवाले किसान गाँव में रहते हैं। इसलिए उनकी हालत गाँव के माहौल से जुड़ी हुई है। खेती की फसल उनकी मेहनत का फल है। भारत की खेती बारी मौसम पर निर्भर है। इसलिए बाढ़, सूखा आदि के आने पर उनकी खेती नष्ट हो जाती है। भारत के अधिकांश किसान गरीब और अशिक्षित हैं। बेरोज़गारी हमारे गाँवों की सबसे बड़ी समस्या है। गाँव का मुख्य पेशा खेती है, कृषि के सारे काम एक दूसरे की साझेदारी एवं सहयोग से होते हैं।

किसान का खून-पसीना बहाकर ही लोगों का खाना उपजाता है। अगर देश में किसान नहीं होता, तो भोजन भी नहीं होता। अन्न पृथ्वी की उपज है। एकांत श्रीवास्तव की 'अन्न' की ये पंक्तियाँ किसान और धरती के बीच के घनिष्ठ सम्बन्ध दर्शाती हैं-

“अन्न

धरती की ऊष्मा में पकते हैं  
और कटने से बहुत पहले  
पहुँच जाते हैं चुपके से  
किसान की नींद में”<sup>1</sup>

अन्न किसान की कड़ी तपस्या और मेहनत का फल है। प्रत्येक अनाज में निहित शक्ति किसान की मेहनत से प्राप्त होती है।

किसान का जीवन ज़मीन पर निर्भर करता है। दोनों का एक अविभाज्य बंधन है। इसलिए एकांत श्रीवास्तव की 'ज़मीन' कविता में किसान और ज़मीन के बीच सुख-दुख की यादों के अलग-अलग रंग छिपे हैं।

## ♦ प्रिन्सी मात्यु

“एक अटूट रिश्ते की तरह  
कभी नहीं टूटना चाहती थी ज़मीन  
बिक जाने के बाद भी”<sup>2</sup>

एकांत श्रीवास्तव जी की कविता 'ज़मीन' में ज़मीन किसान के सपने में आती है। किसान जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्र कविता में उभरते हैं। किसान जीवन के वास्तविक सुख-दुख, आशा-निराशा और संघर्ष भी कविता में हैं। किसान के विभिन्न स्तर हैं- धनी किसान है, मध्यवर्गीय भी और खेतीहर मज़दूर भी।

आज किसानों की स्थिति बहुत दयनीय है। पहले किसानों के घर धान से भरे होते थे। लेकिन आज खाली हैं। कोठार में अभी भी अन्न नहीं है। इसका उल्लेख 'कन्हार' में इस प्रकार किया गया है-

“मगर आज कोठार में अन्न नहीं  
और कोठी में धान

कितना खाली खाली यह धान का कटोरा।”<sup>3</sup>

किसानों को उनकी खेती का फल कभी नहीं मिलता। अगले साल खेती करने के लिए आपको ब्याज पर उधार लेना होगा। अंततः उन्हें कर्ज के बोझ के तले दबे रहना पड़ता है। अगली बार जब फसल खराब होती है, तो वे अपनी सभी गायों और बैलों को साहूकारों को बेच देते हैं। अंततः अपना खेत भी बेचना पड़ता है। यही है किसानों का हाल। किसानों की इस विवशता को एकांत श्रीवास्तव ने 'कन्हार' में यों बयान किया है-

“कभी देखो, महाजनी की महीन पैतरेबाजियाँ  
जलती हुई फसलें

नीलाम होते गाय प्रैल

बिकते हुए खेत

और उसकी मिट्टी से लिपटकर रोता हुआ किसान”<sup>4</sup>

‘सिला बीनती लड़कियाँ’ कविता में एकांत श्रीवास्तव जी ने इस प्रकार कहा है-

“धान कटाई के बाद  
खाली खेतों में  
वे रंगीन चिड़ियों की तरह उतरती हैं  
सिला बीनने झुंड की झुंड  
और एक खेत से दूसरे खेत में  
उड़ती फिरती है।”<sup>5</sup>

कटाई के बाद खेतों में छूटी हुई धान की बालियाँ बीनने झुण्ड की झुण्ड लड़कियाँ एक खेत से दूसरे खेत में रंगीन चिड़ियों की तरह उड़ती-फिरती कवि को नज़र आती हैं। कवि अपने गाँव के विगत दिनों का स्मरण करता है। कवि ने सूखे के कारण ग्रामीण किसानों के अभाव तथा दर्द का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है।

‘पसहर झड़ानेवाली स्त्रियाँ’ कविता में वे लिखते हैं “पसहर झड़ानेवाली स्त्रियों के आँचल में झड़ते हैं दाने उदास और खाली आँगन में पाहुन बनने के लिए वे झड़ते हैं ठेकी के सन्नाटे में संगीत बनने के लिए वे झड़ते हैं बर्तनों का खालीपन भरने के लिए वे झड़ते हैं उबलते अदहन में खदबदाने के लिए वे झड़ते हैं पुरइन के ताजा पत्तों पर परोसे जाने के लिए वे झड़ते हैं रक्त और उर्जा और फास्फोरस बनने के लिए देवताओं! आकाश से क्या फूल झड़ते होंगे इस तरह जिस तरह वे झड़ते हैं पसहर झड़ाने वाली स्त्रियों के आँचल से”<sup>6</sup>

कवि के विचार में इन्हीं पगडंडियों पर पसहर झड़ानेवाली स्त्रियों के जीवन में गरीबी इस तरह छायी हुई है कि पके धान को देखते ही उनमें उत्साह भर जाता है। यह पसहर धान उनकी रोज़ी रोटी का साधन बन जाता है। किसान के पास बुवाई और कटाई का त्योहार है,

लेकिन उन्होंने अपने त्योहारों के शोर खो दिया है। जब सरकार कॉपरेट हितों में हस्तक्षेप करती है, तो किसानों के लिए केवल एक ही सवाल है कि ईश्वर न करे, आसमान से फूल गिरें... जैसे? हालांकि उम्मीदें धराशायी हो जाती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एकांत श्रीवास्तव ने अपनी कविताओं में किसानों का जीवन यथार्थ प्रस्तुत किया है। आज किसानों की स्थिति बहुत ही दयनीय और चिंताजनक है। खेत में कड़ी मेहनत करनेवाले किसान अधिकारों से वर्षों से वंचित किये जा रहे हैं। उनकी ओर से अक्सर दर्द और उपेक्षा होती रही है। वे हाशिए पर जीवन जीने की किस्मत में हैं। ऐसी स्थिति भी होती है कि फसल खराब होने, उपज का उचित मूल्य न मिलने और कर्ज चुकाने में असमर्थता के कारण किसान आत्महत्या करते हैं।

### संदर्भ

- 1.अन्न हैं मेरे शब्द, एकांत श्रीवास्तव, पृ.सं. 41; सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; 2013
- 2.वही, पृ.सं. 36
- 3.बीज से फूल तक, एकांत श्रीवास्तव, पृ.सं. 124; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 2003
- 4.वही, पृ.सं. 134
- 5.अन्न हैं मेरे शब्द, एकांत श्रीवास्तव, पृ.सं. 29
- 6.मिट्टी से कहुँगा धन्यवाद, एकांत श्रीवास्तव, पृ.सं. 42; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली; 2000

◆शोधार्थी

सरकारी महिला महाविद्यालय,  
तिरुवनंतपुरम, केरल

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वधुतक्काट्टु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित  
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,  
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha